गीता का सार

- हरिकृष्ण (कान)



पावन स्मृति में शत्–शत् नमन



स्व. श्री गोधूमल अहूजा
(1925–1987)



श्रीमति भगवन्ति अहूजा
(1929–2005)

नमनकर्ता

पुत्र	:	सुरेन्द्र अहूजा	बहू	:	कादम्बरी अहूजा
–''–	:	सी.के. अहूजा	–''–	:	मनीषा अहूजा
–''–	:	उमेश अहूजा	–''–	:	हँसा अहूजा
–''–	:	महेश अहूजा	–''–	:	नेहा अहूजा

: आवास :

ए–23, निराला नगर, लखनऊ

: व्यवसाय :

गुड बेकरी, केसर बाग, इन्द्रा ब्रज के पास, निशतगंज, आर्यन रेस्टोरेंट के पास
आलम बाग, लखनऊ (उ.प्र.)

श्रद्धा तथा प्रेम से, जो गीता का पाठ किया।
तो समझेंगे हम सब, बाँटना हमारा फल लाया।।



गीता का सार

अगस्त, 2009

- हरिकृष्ण (कान)

कृष्ण रुपानी
"जगदीश भवन"
31, मकबरा रोड, लाल बाग
लखनऊ (उ.प्र.)-226001
फोन : 0522-3236251

अति आवश्यक

यह 'गीता का सार', जो आप लोगों के हाथों में है, इसका विशेष श्रेय, प्रिय राषी अहूजा को जाता है। उसके ही अथक परिश्रम तथा निजी व्यस्त समय में से कुछ समय निकालकर ही अपने पूजनीय दादा-दादी की पुनीत पावन स्मृति में इस पुस्तक के छपवाने में विशेष योगदान दिया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है, पाठकगण इसका पूर्ण लाभ उठाएंगे।

– **हरिकृष्ण (कान)**

अर्पण

यह "गीता का सार" हम अपने प्रिय मित्र तथा संबंधी श्री गोधूमल एवं श्रीमती भगवन्ति अहूजा के पावन स्मृति में अर्पण कर रहे हैं।

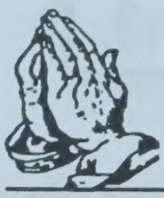
मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसका नियमित पाठ कर, आप सब लोग न केवल आध्यात्मिक लाभ उठाएंगे अपितु अपना जीवन सफल करेंगे।

– आपका शुभचिंतक

हरिकृष्ण (कान)

"जगदीश भवन"
31, मकबरा रोड, लाल बाग
लखनऊ (उ.प्र.)-226001

विषय सूची



निवेदन

इससे पूर्व 1995 में मैंने श्रीमद् भगवद्गीता पर एक पुस्तक अपनी मातृभाषा सिंधी में ''गीता जो पवित्र पैगाम'' के नाम से, जो मेरे द्वारा 1968 में लिखा गया था, छपवाया था। उस समय मेरे कुछ मित्रों और खासकर मेरे अपने बच्चों ने भी कहा था, काश! आपने यह पुस्तक हिंदी भाषा में छपवाई होती तो हम भी कुछ लाभ उठा पाते। अतः इस बात को मद्देनजर रखकर मन में यह निश्चय किया था कि जीवन में कभी समय मिलने पर इसे हिंदी में अवश्य लिखूँगा।

इधर काफी समय से मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती और घर पर बेकार बैठा रहता हूँ, अतः मन में विचार आया कि क्यों न इस समय का सदुपयोग करूँ। सो इस कार्य में जुट गया। मुझे विश्वास है कि मेरे मित्र तथा बच्चे, जो इसके इच्छुक थे, इसे पढ़कर न केवल स्वयं लाभ उठाएंगे, अपितु अन्य लोगों को भी लाभ उठाने का सुअवसर प्राप्त होगा।

वैसे मैंने अपने उस पहले लिखी हुई पुस्तक ''गीता जो पवित्र पैगाम'' को कुछ काट-छांटकर, एक नया रूप देने का प्रयत्न किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है, मेरे पाठकगण इसे पढ़कर अवश्य लाभ उठाएंगे। फिर भी मेरा निवेदन है कि यदि लिखने में कोई भूल-चूक हो गई हो, तो दास को क्षमा कर दें।

ता. : 2/2/2000

हरिकृष्ण (कान)
''जगदीश भवन''
31, मकबरा रोड, लाल बाग
लखनऊ (उ.प्र.)-226001

अध्याय - 1

इस पहले अध्याय में कौरवों और पांडवों की सेना का वर्णन है। अर्जुन के प्रार्थना करने पर श्री कृष्ण भगवान ने उनके रथ को दोनों सेनाओं के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। यहां पर अर्जुन ने गौर से उन सब युद्ध में लड़ने वाले अपने सगे-संबंधियों को देखता है, तो उसके मन में मोह उत्पन्न होता है और अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर रथ के एक कोने में बैठ जाता है और मोहवश युद्ध करने से इनकार करता है

''शोक से व्याकुल-हो गया अर्जुन
शर-चाप को त्यागकर-दुःखित सा तन मन,
बैठा रथ के कोने में 'कान'
मुँह करके-कृष्ण के सामने।''

(1-46)

अध्याय - 2

इस दूसरे अध्याय में, जिसका नाम सांख्य योग है, इसमें वास्तविकता और जाहिर्यत का खूबसूरत बयान किया गया है। सांख्य का अर्थ है शरीर और आत्मा का भेद। अर्जुन के प्रार्थना करने पर कि, हे प्रभो! मैं अपनी भलाई और बुराई को समझ नहीं पा रहा हूँ। अत: आप हमें कृपा करके बताएं कि, मेरे लिए क्या उचित है? जिससे मेरा कल्याण हो, ऐसा उपाय बताए।

इस पर श्री कृष्ण भगवान ने उन्हें सत् और असत् का भेद समझाते हुए कहा, "हे अर्जुन! तुम बातें तो सयानों जैसी करते हो, परंतु जिसके लिए दु:ख नहीं करना चाहिए, उनके लिए दु:ख करते हो, अर्थात् जो मर गए हैं या मरने वाले हैं।"

फिर कहने लगे कि यह शरीर कुछ और वस्तु है और आत्मा कुछ और। जन्म लेने वाला दु:ख-सुख, गर्मी-सर्दी, रंज-राहत आदि को भोगने वाला यह शरीर है, परंतु आत्मा उनसे भिन्न है। वह अमर-अजर और अविनाशी है। इनको दु:ख-सुख आदि कुछ भी नहीं होता। बल्कि वह बाल, युवा या बुढ़ापे के हालातों से निकलकर भी सदा एक रस रहती है। हे अर्जुन! तुम बेकार में इन असत् वस्तुओं के लिए दु:ख कर रहे हो। यह शरीर असत् तथा आत्मा अजर और अमर रहती है। आत्मा न कभी पैदा होती है और न कभी मरती है। शरीर के बदलने पर भी आत्मा में अंतर नहीं आता।

"जैसे पुराने वस्त्र-उतारकर
नवीन वस्त्र कोई पहनता।
जीर्ण शरीर छोड़कर 'कान'
आत्मा नवीन शरीर है-धारता।।"

(2-22)

आत्मा को न आग जला सकती है, न पानी गीला कर सकता है और न ही हवा उड़ा सकती है। इसलिए तुम्हारा शोक करना व्यर्थ है। फिर भी यदि तुम इसे पैदा होकर

मरने वाली वस्तु समझ रहे हो, तो भी तेरा शोक करना मुनासिब नहीं, क्योंकि जिसने जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन मरना होगा। इसलिए तुम इस चिंता को छोड़कर अपने कर्तव्य का पालन करो। फिर भी यदि तुम युद्ध करने से इनकार करोगे तो तेरे धर्म और कीर्ति का नाश होगा और तुम स्वयं अपना लोक-परलोक बिगाड़ोगे। लोग तेरी निंदा करेंगे और एक इज्जतदार के लिए यह डूब मरने की बात होगी।

"हठ करके यदि धर्मयुद्ध ना करोगे,
धर्म और यश खोकर पाप को पाओगे।
'कान' निंदा को प्राप्त करोगे,
तू अर्जुन इस जगत में।।
(2-23)

"आम लोग करेंगे तेरी,
सदा ही बदनामी।
मौत से बढ़कर हो जाएगी,
'कान' यह तेरी जिंदगानी।।"
(2-24)

यदि गहराई से देखा जाए तो यह उपदेश बहुत गहरा और रहस्य से भरा हुआ है। यह जितना युद्ध में उत्साह देने वाला है, उतना ही एक जिज्ञासु को धर्म मार्ग में चलने का सही रास्ता भी देता है। श्री भगवान फरमाते है कि, जिसने जन्म लिया है, वह अवश्य मरेगा। परंतु वह मौत भी दो प्रकार की होती है। एक बहादुरों की और दूसरी कायरों की। धर्म पालन करते, कुरूक्षेत्र में मुस्कराते मरना शूरवीरों की मौत है और फर्ज से मुँह मोड़कर मरना कायरों की। मौत तो दोनों हालातों में होगी। एक मोक्षकारी और दूसरा बंधन में डालने वाला। अर्थात् एक कल्याणकारी और दूसरा दुखदाई।

" आए हैं सो जाएंगे, राजा रंक फकीर।
इक सिंघासन चढ़ चले, दूजे बांधे जात जंजीर।।"

(परम संत कबीर साहिब)

महापुरुषों का यही उपदेश होता है कि जीव दुःख और बंधन से आजाद होकर अपने मालिक से जा मिले और जन्म-जन्मांतरों के दुःखों से छुटकारा पा ले। इसलिए उन्हें कर्तव्य से अवगत कराते हैं कि संसार के भोग पदार्थ, धन-दौलत, शक्ति आदि की कामना हमें बंधन में डालती हैं और इनका लगाव ही हमें भक्ति मार्ग से दूर ले जाता है।

आखिर में फिर एक जिज्ञासु के लिए यह चेतावनी दी जाती है कि, वे शरीर तथा इंद्रियों के विषयों पर ध्यान न देकर, केवल अपनी दृष्टि आत्मा की ओर रखें, क्योंकि मनुष्य मात्र का यही कर्तव्य है, कि अपनी आत्मा की उन्नति की ओर ध्यान दें। सुख-दुख का संबंध भी केवल शरीर से है, न कि आत्मा से।

''लाभ-हानि और दुःख-सुख
माया का सामान है,
स्तुति निंदा या चाहे
मान और अभिमान है।
इनकी कब परवाह उसे?
जो पुख्ता दिल इंसान है,
जो उलझ रहा इनमें
वह अभी नादान है।
राह की ये अड़चनें
और मंजिल दूर है,
'कान' इनसे बचना चाहिए
जो खैरियत मंजूर है।''

अध्याय - 3

इस अध्याय में श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को बताते हैं कि, निष्काम कर्मयोग उत्तम साधन है, जिससे मनुष्य हर तरह से सुखी रह सकता है। जो कर्म अपने त दूसरों की भलाई के कारण किए जाते है और जो फल की इच्छा को त्यागकर कि जाता है, वह मनुष्य को कर्मयोगी बनाते है। स्वार्थ रहित, इंद्रियों को वश में करके, ने और कल्याणकारी कर्म करना, सबसे उत्तम होता है। इस तरह कार्य करते हुए मनु सब कामनाओं से मुक्त होकर मोक्ष गति को प्राप्त करता है।

आगे चलकर फिर श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि, इस संसार में कोई इंसान बिना कर्म किए, एक पल भी नहीं रह सकता। इस हालत में यदि मनुष्य क इंद्रियों को वश में रखकर कार्य करेगा तो यकीनन गुमराही को प्राप्त होगा, परंतु य वह सावधान होकर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अपने मन का लगाव उसमें रखे तो वह अवश्य कामयाब होगा। ठीक उसी प्रकार जैसे राजा जनक अपने राजका करते हुए भी पूर्ण त्यागी तथा तपस्वी की तरह रहते थे। इसीलिए उसे राजऋषि क जाता है।

इसलिए हे अर्जुन! तुम भी अपने कर्मों को मालिक को अर्पण करके निर्भय अ कामना को त्यागकर यह धर्मयुद्ध करो क्योंकि जो मनुष्य मेरे वचन को मानकर उस चलता है, वह कालचक्र से मुक्त हो जाता है। परंतु जो उसके विरुद्ध चलता है, व भाग्यहीन होता है और कालचक्र में आ जाता है। जहाँ से फिर जन्म-जन्मांतरों तक व से आजादी पाना उसके लिए मुश्किल हो जाता है।

इस पर अर्जुन ने प्रश्न किया, हे प्रभो! वो कौन है, जो मनुष्य को पाप की अ ले जाता है? उत्तर में श्री भगवान ने फरमाया कि ''काम तथा क्रोध'' ये दोनों मनुष्य बड़े दुश्मन होते हैं। वे बड़े पापी हैं, अग्नि के समान ये कभी न तृप्त होने वाले है। का की बुद्धि से सदा दुश्मनी रहती है। काम को अखंड के समान समझा जाता है, क्यों जैसे अग्नि में लकड़ियों को डालने से वह और तेज जलने लगती है वैसे ही काम

अनेक तरह के भोगों को भोगकर उसकी तृप्ति नहीं होती बल्कि और भी जोरदार हो जाता है। इसलिए हे अर्जुन! उस महापापी काम को नष्ट करो। वैसे इंद्रियों को बलवान कहते हैं, परंतु उनसे दूर मन है। मन से दूर बुद्धि है और बुद्धि से दूर आत्मा है। इस प्रकार तू मन को वश में करके, इस महापापी काम को मारकर खत्म कर दो।

इस अध्याय में हमें यह शिक्षा मिलती है कि कर्म करना हर मनुष्य के लिए जरूरी है, परंतु श्रेष्ठ कर्म वह है जो हर प्रकार के स्वार्थ तथा कामना को त्यागकर केवल अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के लिए किया जाए। क्योंकि ऐसे कर्मों में जीव का फँसाव या लगाव नहीं होता। इसलिए वह मोक्षकारी होता है। यह परमार्थ तथा उपकार का मार्ग है। इस प्रकार जो कार्य समर्पण भाव के बिना स्वार्थ और कामना को मध्य स्थित रखकर किया जाता है, उसमें अहंकार अधिक होता है। काम और क्रोध दोनों के मनुष्य के बड़े दुश्मन होते हैं जो कल्याण के मार्ग में बाधा डालते है। इनसे बचकर मालिक के ध्यान में एकाग्रचित्त होकर लगे रहना ही मनुष्य का परम धर्म है।

अध्याय - 4

इस अध्याय में भगवान जी अर्जुन को कहते हैं कि, यह रूहानियत का भेद जो तुझे बता रहा हूं, वो ही पूरी सच्चाई है। यह अनादि और अनंत है। जो युग-युग से चली आ रही है। यही उपदेश पहले मनु को दिया गया था। फिर इक्षवाकु को मिला और उनके द्वारा ऋषि-मुनियों तथा राजऋषियों के माध्यम से सारे संसार में फैल गया। यह भी एक सच्चाई है कि, जैसे सच के साथ झूठ, भलाई के साथ बुराई, पाप के साथ पुण्य तथा धर्म के संग अधर्म रहता है, उसी प्रकार रात के अंधेरे दूर होने पर सूरज देवता अपनी रोशनी फैलाकर प्रकाश करता है। इसी प्रकार जब-जब धरती पर पाप बढ़ जाता है और आसुरी शक्तियां देवीय शक्तियों पर हावी पड़ जाती है, तब-तब संसार में धर्म की स्थापना करने तथा अधर्म का नाश करने तथा साधु-संतों की रक्षा करने के लिए कुल मालिक किसी न किसी रूप में अवतार लेता है।

''जब-जब धर्म की होती हानि, अधर्म से बढ़ती बदनामी।
तब 'कान' मैं अपना सृजन करता, किसी न किसी रूप में जन्म लेता।।''

(4-7)

''साधु संतों की रक्षा करने, और दुष्टों को दंडित करने।
हर युग में 'कान' मुझे आना होता, धर्म स्थापन का फर्ज निभाता।।''

(4-8)

इसके बाद भगवान ने फिर फरमाया कि, ''युग-युग में महापुरुष धर्म और परमार्थ को फैलाने के लिए आते है और जो लोग उस समय उनसे दिल से लगाव जोड़ते है तथा उनको आत्मसमर्पण करते हैं, वे आवागमन के चक्र से निकल जाते हैं और मुक्ति को प्राप्त करते है। साथ ही वे मालिक से मिलकर एक हो जाते है।'' हे अर्जुन इस प्रकार कितने ही सच्चाई के तलबगार लोग, महापुरुषों के उपदेशों पर चलकर मालिक को प्राप्त हो चुके हैं। अब वही उपदेश तुम्हें भी दिया जा रहा है कि तुम भी उस उपदेश को मन में बसाकर अपना कल्याण कर सको।

इसमें कोई शक नहीं कि कर्म का भेद करना बहुत कठिन है। इनमें बड़े-बड़े विद्वान भी उलझकर रह जाते हैं, इसलिए मैं तुझे एक आसान उपाय बता रहा हूं। शुभ तथा अशुभ कर्मों के त्याग तथा भेद को तुम्हें समझना चाहिए। क्योंकि कर्मों के त्याग में ही सबसे बड़ा सुख समाया हुआ है। जिनके सारे कर्म, कामना तथा अहंकार से रहित हैं और रूहानियत की आग में जिनके सारे कर्म भस्म हो चुके है, उनको संसार में उत्तम पद की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य संसार की कामनाओं को त्यागकर सदा मालिक के स्वरूप में खो जाते है, वे सब कर्मों को करते हुए तथा संसार में रहते हुए भी निर्लेप रह सकता है। आसक्ति से रहित चित्त वाले उस पुरुष पर फिर कर्मफल का असर भला कैसे चढ़ सकता है? आगे भगवान फरमाते है कि, ''मन की शुद्धि और पवित्रता के लिए तथा कर्म बंधन से मुक्ति के लिए कितने ही साधक अनेक प्रकार के साधनों को अपनाते हैं, परंतु उन सबसे रूहानी अभ्यास बेहतर है, जो पहले भी तुम्हें बता चुका हूँ। वैसे दान-पुण्य करने से भी रूहानी ज्ञान की प्राप्ति उत्तम है, क्योंकि इससे सब कर्म समाप्त हो जाते हैं। जब तुम असलियत के भेद को जानने वाले महापुरुषों की शरण में जाकर दंडवत प्रणाम कर उनकी सेवा द्वारा उन्हें प्रसन्न करोगे तो वे तुम्हें उस रूहानी ज्ञान का उपदेश देंगे। उस ज्ञान को प्राप्त कर के तुम अज्ञानता से मुक्त हो जाओगे। फिर तुम हर वस्तु में मालिक को देख सकोगे। वह पूरे गुरू द्वारा प्राप्त ज्ञान इतना प्रतापवान होता है कि तू चाहे कितना भी पापी क्यों ना हो, वह रूहानी ज्ञान तुझे रूहानी ज्ञान की कश्ती में बिठाकर इस संसार रूपी पाप के समुद्र से पार कर देगा। जिस प्रकार लकड़ी के ढेर को आग की एक छोटी सी चिंगारी भस्म कर देती है। उसी प्रकार वह रूहानी ज्ञान उनके पापों को भस्म कर देता है। इस संसार में सच्चे गुरू के रूहानी ज्ञान के सिवा कुछ भी नहीं है। परंतु उसका असर केवल सच्चे और अभ्यासी पुरुषों पर ही हो सकता है।'' इसलिए हे अर्जुन! तुम सदा नेकी तथा कल्याण के कार्य इस प्रकार करो जो अपने सारे संशय और कर्म मुझे अर्पण कर, अपने चित्त को मुझमें लगाके रखो। यह भी निश्चित समझ लो कि जिसने समत्व बुद्धि रूपी योग द्वारा अपने रूहानी ज्ञान को मध्यस्थित रखकर अपने समस्त भ्रमों को खत्म कर लिया है और जो सदा प्रभु के ध्यान में मग्न रहता है, वह कर्म बंधन से मुक्त हो जाता है। इसलिए तुम भी उस ज्ञान रूपी तलवार द्वारा अपने सारे भ्रमों को काटकर उस समत्व बुद्धि रूपी योग में स्थित हो जा।

अध्याय - 5

इस अध्याय में श्री कृष्ण महाराज ने जब ऊपर कहा हुआ उपदेश दिया और कहा कि तुम अपने सारे कर्मों को मन की शांति में लीन करके अपने फर्ज को पूरा करने में लग जाओ, तब अर्जुन के मन में संशय उत्पन्न हुआ और उन्होंने प्रार्थना की कि "हे कृष्ण! पहले तो आपने कर्मों के सन्यास की बढ़ाई की और अब आप कर्मयोग में लगने का उपदेश रहे हैं। इसलिए मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है। सो कृपा करके हमें बताएं कि इन दोनों में क्या श्रेष्ठ है?"

उत्तर में श्री भगवान ने फरमाया कि वैसे तो ये दोनों तरीके ठीक है। परंतु इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। दोनों अपने-अपने स्थान पर ठीक है। इसलिए इनके अंतर के चक्कर में न पड़कर उनके असल मतलब को लो। अर्थात् कर्मफल के लगाव से दूर रहो। जहां लगाव होता है, वहां बंधन का होना भी आवश्यक होता है। और जहां लगाव नहीं, वहां बंधन भी नहीं होता। यही एक खास बात है जिस पर ध्यान देने की जरूरत होती है। आगे फरमाया कि कर्मफल के लगाव को त्याग करने वाले या कर्म के सन्यास में लगे हुए पुरुष को चाहिए कि वह अपने मन से अहं भाव को त्याग कर दे क्योंकि यही वास्तविक योग है और इस योग में लगे हुए पुरुष मालिक से मिलकर एक हो जाते हैं। और परम शांति को पाते हैं। जो मनुष्य अपने सभी कर्मों को मालिक को अर्पण करके, अपनी तृष्णा अग्नि को त्यागकर, अपने कर्तव्य को पूरा करता है, वह अपने सारे कर्मफलों से ऐसे मुक्त रहता है, जैसे कमल का फूल जल में रहकर भी अपने ऊपर पानी को टिकने नहीं देता। वैसे ही निष्काम कर्मयोगी भी अपने जीवन निर्वाह और अंतःकरण की शुद्धि के लिए अपने मन, बुद्धि, शरीर तथा इंद्रियों द्वारा लगाव और फँसाव से दूर रहकर कर्म करता है। उस निष्काम कर्मयोगी के मन में कोई भी कामना नहीं रहती और वह अपने कर्मों के फल को मालिक को अर्पण करके शांति को प्राप्त होता है। और इस तरह वह जन्म-मृत्यु के चक्कर से आजाद हो जाता है।

इसी प्रकार गुरू वाणी में भी कहा गया है-

"जैसे जल में कमल निरालम, मुर्गाबी नैशानी,
श्रुति शब्द भौ सागर तरियै, नानक नाम बखानी।"

अर्थात् जैसे कमल का फूल जल में रहकर जल से निर्लेप रहता है, ठीक उसी तरह मुरगाबी (जल में रहने वाला पक्षी) सदा जल में रहकर भी अपने पंखों पर पानी की एक भी बूंद टिकने नहीं देता। वैसे ही जो मनुष्य अपने मन को नाम और भक्ति में लगाकर रखता है, उसकी सुर्ती अंतरमुख होकर शब्द में लीन हो जाती है और फिर वह आसानी से भव सागर से पार हो जाता है। ठीक उसी तरह विवेकी और गुरमुख पुरुष संसार में रहकर अनेक पदार्थों में बरतकर भी अपने को ख्वाहिशों और कामनाओं से दूर रखते हैं। ऐसे ही लोगों के जीवन को श्री भगवान ने श्रेष्ठ जीवन कहा है। **''योगः कर्मस् कौशलम्''** अर्थात् कर्म करने में चतुराई का नाम ही योग है। जिसका मन समत्व भाव में स्थित है, ऐसे लोग सारे संसार में अपनी जीत प्राप्त करते है। क्योंकि जिसका ध्यान केवल एक ओर होता है, उसमें मालिक के ज्योति का प्रकाश प्रकट होता है और ऐसे ही लोग समत्व भाव में स्थित रहकर मालिक को प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात् जिनको मालिक से मिलने की सच्ची लगन होती है, वे बाह्यःमुखी वृत्तियों को अंतर की ओर समेटकर, अंतरमुख आनंद को प्राप्त करते हैं। यही वास्तव में परम आनंद है। परंतु जो भोग इंद्रियों तथा विषयों से उत्पन्न होते है, वे केवल भोग विलासी लोगों को ही सुख पहुँचाते हैं, किंतु वास्तव में वे दुख को ही उत्पन्न करते हैं और क्षणिक होते है। इसलिए हे अर्जुन! विवेकी पुरुष उसमें कभी नहीं विचरते। जो लोग सब पापों से मुक्त है, वे मालिक के ध्यान में एकाग्रचित्त होकर, अपने साथ अन्य लोगों का भी कल्याण करते हैं। इस प्रकार औरों की भलाई में लगे हुए पुरुष, परम पद को प्राप्त करते हैं।

''मन के हारे हार है, मन के जीते जीत,
पारब्रह्म प्रभु पाइये, मन ही की परतीत।
मन को ही परबोधिये, मन ही को उपदेश,
जो ये मन बस आवे, शिष्य होवे सब देश।।''

(परम संत कबीर साहिब)

गीता के इस पाँचवें अध्याय से हमें यह शिक्षा मिलती है कि इस संसार में वो ही सुखी जीवन-यापन करता है और वो ही परम आनंद को प्राप्त कर सकता है जो अपने मन को बाह्य विषयों से हटाकर अंतरमुख होकर प्रभु के भजन ध्यान में मग्न रहता है। वैसे इस नाशवान संसार के पदार्थों को बरतना तो पड़ेगा, परंतु उनके लगाव में मन को न फँसा कर सदा मन को प्रभु के ध्यान में लगाकर जिंदगी जीने वाला ही परम पद या मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

अध्याय - 6

इस अध्याय में श्री कृष्ण भगवान ध्यान योग और राज्य योग का वर्णन करते है जिसे संत मत में सुरित शब्द योग कहा जाता है। श्री भगवान जी फरमाते हैं कि जि पुरुष को ना तो कर्मों से और ना ही कर्मों के फल से कोई लगाव है, वो सन्यासी त योगी है और ऐसा ही पुरुष योग मार्ग में युक्त हो सकता है। इंद्रियों के योग या उसमें मो का न होना या कर्मों में मोह के न होने का नाम ही वास्तविक त्याग नहीं है, परंतु सच्च त्यागी वह है, जो उन सबको भोगते हुए भी निर्लेप रहता है और सब कर्मों को मालि को अर्पण कर देता है। इसलिए हर मनुष्य का यह कर्तव्य है कि अपने मन को संसा के मोह माया में फँसने न दे। क्योंकि यह मन जब संसार के मोह माया में फँस जाता तो वह स्वयं अपना ही दुश्मन बन जाता है और जब वह सब तरह की ख्वाहिशें त अहंकार से मुक्त रहता है, तब वह अपने वश में रहता है और वह अपना मित्र बन जा है। जिस पुरुष का मन अपने वश में हो जाता है और शांत रूप हो जाता है या जिस पुरु के मन की चंचलता तथा स्थिरता मिट चुकी है, उसका मन उसके लिए लाभदायक ब जाता है। परंतु जिसका मन चंचल, अस्थिर और विषय भोगों की ओर भागता है, व उनके लिए दुश्मन बन जाता है। यह कहना अनुचित न होगा कि जिस पुरुष ने अप मन को वश में कर लिया है, वह सुख-दुख तथा सर्दी-गर्मी आदि जैसे हालातों गुजरकर भी सदा शांति में रहता है।

पाँचवें अध्याय में बताया गया है कि मनुष्य का मन ही सब दु:खों की जड़ त बंधन का कारण है। इस मन की अनेक वृत्तियाँ हैं, जिनके संकल्प तथा विकल्प क वर्णन करना अति कठिन है। यह मन ही मनुष्य को बार-बार माया के मोह में फँसा है और यहीं से जीवों के दु:खां की इतिश्री होती है परंतु यदि इसी मन को योग साध द्वारा वश में किया जाता है, तब उसके सारे संकल्प विकल्प दूर हो जाते हैं और फिर व स्थिर होकर जीवन के लिए कल्याणकारी बन जाता है। इसलिए आवश्यकता यह है वि अपने मन को वश में रखें। वैसे दुख और बंधन कहीं बाहर से नहीं आता परंतु अप

बिगड़ा तथा बेलगाम मन ही इसका मूल कारण होता है। वैसे मन को सीधे रास्ते पर लाने के लिए अक्सर बाह्य शक्ति की आवश्यकता पड़ती है और वह केवल किसी महापुरुष की शरण में जाने से मिल सकती है। उनके द्वारा मिली शिक्षा द्वारा हम अपने मन को स्थिर करके बाह्य विषयों को समेटकर अंतरमुख योग द्वारा साधन में लगाकर शांत कर सकते है। इसलिए हमें ध्यान योग, राज योग और सुरति शब्द योग की आवश्यकता होगी।

अभ्यासी को चाहिए कि वह अपने मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में रखकर एकांत स्थान में अपने मन को मालिक के ध्यान में लगाए। इस प्रकार वह भव और आशा को मिटाकर मालिक के स्वरूप में समा जाता है। इसके लिए सरल रास्ता यह है कि शुद्ध जमीन पर आसन लगा दें। वह आसन न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा हो। इस तरह आसन लगाकर उस पर बैठकर अपने मन और इंद्रियों के विषयों को वश में करके अंतःकरण की शुद्धि के लिए योग साधन का अभ्यास करें। अपने शरीर तथा गर्दन को सीधा रखकर और अपने ख्यालों तथा दृष्टि को सब ओर से हटाकर अपने सामने जमा दें। सब तरह की आशा और निराशा को मिटाकर ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कर शांत चित्त से मन को एकाग्र करके मालिक के स्वरूप में लीन हो जाएं। जो इस प्रकार सदा अपने मन को मालिक के स्वरूप में लगा देता है, उनको मालिक के स्वरूप में लीन हो जाने का अवसर प्राप्त हो जाता है और वह परम पद को प्राप्त कर सकता है।

यह योग अभ्यास जो श्री कृष्ण भगवान ने गुरू के रूप में अपने शिष्य अर्जुन को बताया वह तो केवल शरीर की बैठक और बाह्य स्वरूप की हालत है, परंतु जो असली तरीका है और जिसके द्वारा सुरिति को शब्द में मिलकर अपने मन को वश में किया जाता है, वह एक रूहानी राज है, जिसका यहाँ वर्णन करना कठिन है। उसके अभ्यास द्वारा मन के सारे संकल्प तथा विकल्प समाप्त हो जाते हैं और आशा-निराशा, भौ-भ्रम सब खत्म हो जाते हैं। सुरिति अपने निज देश की ओर रूख करती है और मनुष्य अपने अंतर में रूहानी मंजिलों को तय करके अपने धुर स्थान अर्थात् अपने दयाल के देश में पहुँच जाता है। यही असली भेद श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन को समझाया। और उसके बाद अभ्यासी का रहन-सहन, आचार-व्यवहार, उठना-बैठना

आदि बताकर अभ्यास में बैठने की युक्ति बताई, जिसका विवरण ऊपर दिया चुका है।

आगे अभ्यासी के लिए अन्य जरूरी चीजें बताते हुए फरमाया कि "योग सा न अधिक खाने वालों का, न बिल्कुल कम खाने वालों का या न ही कम नींद क वालों का सिद्ध होता है। बल्कि यह सब दुखों को नाश करने वाला योग केवल संतुलि भोजन करने वालों का तथा उचित आराम और नींद करने वालों का सफल हो पाता क्योंकि वश में किया हुआ चित्त मालिक के स्वरूप में अच्छी तरह लीन रहता है वही पुरुष सब कामनाओं से मुक्त योगी कहलाता है। जिस तरह दीये की लौ हवा साथ घूमती रहती है और उसके घूमने-फिरने से पूरी-पूरी रोशनी नहीं मिल सकती न ही उससे पूरा लाभ उठाया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार जब तक मनुष्य की चि वृत्ति वासनाओं तथा ख्वाहिशों से घिरी रहती है, तब तक रूहानी रोशनी को पा ले कठिन होता है। परंतु जब योग अभ्यास द्वारा इन चंचल विषयों को एकाग्र किया ज है, तब उसमें रूहानी रोशनी, ताकत तथा खुशी प्रकट होती है और फिर साधक का आनंदमय बन जाता है। जिस समय योग अभ्यास द्वारा चित्त की वृत्तियों का नाश हो है, मन में वैराग्य उत्पन्न होता है और उस समय शांत चित्त में शुद्ध बुद्धि के द्वारा आ का दर्शन होता है। यह योग अभ्यास वह अनमोल रत्न है जो जिसको मिल जाए उन फिर किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। मानो उस मनुष्य ने संसार के दुखों से मुक्ति पा ली। ऐसे पुरुष की उस शांत चित्त दशा को ही योग समझना चाहि

हे अर्जुन! जो अभ्यासी अपने साधन द्वारा सन्यासी हालातों जैसे सुख-दु निंदा-स्तुति तथा मान-अपमान आदि में एक जैसी भावना रखता है, वह पुरुष योगि में श्रेष्ठ माना जाता है। इस पर अर्जुन ने प्रश्न किया कि हे प्रभु! आपने तो समान में रहकर योग साधन का उपदेश दिया पर उसमें तो मन की एकाग्रता की आवश्यक होती है, किंतु मन के चंचल स्वभाव के कारण यह अति कठिन कार्य है। हे प्रभो! मन मलीन स्वभाव वाला और बड़ा बलवान है, इसलिए इसको वश में करना मैं इ कठिन समझता हूँ जितना किसी उद्दण्ड घोड़े को लगाम डालना या हवा के रूख मोड़ना।

भक्त अर्जुन का यह सवाल बेशक जीव के हालात अनुसार है क्योंकि यह

अति चंचल है और जन्म-जन्मांतरों की मायावी संस्कारों को पाकर अधिक बलवान बन जाता है। वह हर समय अपनी वृत्तियों को लेकर जीव को फँसाने के चक्कर में रहता है और खासकर उस समय जब यह जीव, योग अभ्यास द्वारा इस मन को अंतर की ओर ले जाने का यत्न करता है। इस पर श्री भगवान बोले, हे अर्जुन! यह बिल्कुल सत्य है कि यह मन बेशक बड़ा चंचल है और मुश्किल से वश में आता है, परंतु इसका इलाज भी है। जब इसको बार-बार योग अभ्यास में लगाया जाता है और साथ ही इंद्रियों के विषयों से वैराग्य का साधन भी किया जाता है, तब इसका वश में आ जाना कोई बड़ी बात नहीं। किंतु इनको बलवान समझकर प्रयत्न करना कभी नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि जिसका मन वश में नहीं होता, उनको योग की प्राप्ति का होना भी कठिन हो जाता है। परंतु जिसका मन अधीन है, वह अपने अधीनस्थ मन द्वारा योग के युक्ति का मार्ग आसानी से तय करके मालिक से मिलकर एक हो सकता है। यह मेरा पूरा निश्चय है।

इस पर अर्जुन ने सवाल किया, "हे प्रभो! जिस पुरुष का चित्त अभ्यास की गिरावट से पूरी मंजिल को नहीं पहुँच सकता या यत्न करते हुए भी मालिक के स्वरूप तक नहीं पहुँच सकता और आधे में ही नीचे गिर जाता है उसका क्या हाल होता है? क्या मालिक की प्राप्ति के मार्ग में भटका और निराश मानुष छिन्न-भिन्न बादल की तरह दोनों ओर से अर्थात् मालिक की प्राप्ति तथा सांसारिक योग पदार्थों से नाउम्मीद तो नहीं होता? हे भगवन्! मेरे इस संशय को मिटाने के लिए केवल आप ही समर्थ है। कोई अन्य इस संशय को मिटाने वाला मिलना कठिन है।"

इस पर भगवान ने उत्तर में कहा, "हे अर्जुन! ऐसा पुरुष न इस लोक में तथा ना परलोक में भी नाश हो सकता है क्योंकि कोई भी शुभ कार्य व्यर्थ नहीं जाता है। ऐसा योग भ्रष्ट पुरुष परलोक को प्राप्त कर, कुछ समय वहां रहकर, फिर शुद्ध रहन-सहन वाले पुरुषों के घर में जन्म लेता है। और वैराग के कारण रूहानियत के साहिबों या साधु-संतों का संग करके आंतरिक तामील द्वारा रूहानी राज को पा लेता है और पूर्व जन्म में आधे में छूटी हुई ताकत को पाकर अब नए सिरे से योग अभ्यास को आरंभ करता है। इस प्रकार वह अपनी पूर्व में कमाई हुई भक्ति को साथ लेकर आगे बढ़ता है और इस तरह अनेक जन्मों में योग अभ्यास द्वारा पवित्र तथा निर्मल होकर, अपने

कल्याण का यत्न करते हुए, पूर्ण संत की ऊँची पदवी को प्राप्त कर लेता है।''

तत्पश्चात् फिर श्री कृष्ण भगवान बोले, ''योग मार्ग को उत्तम इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इस मार्ग में कोई भी हानि नहीं है। वैसे तो सारे शुभ कर्म अपने-अपने स्थान पर अच्छे होते है परंतु योग अभ्यास का दर्जा इस मायने में उत्तम माना जाता है-

''तुलसी अपने राम को
रीझ भजो या खीझ।
भूमि परे सो जामे हैं
उल्टो-सीधो बीज।।''

अर्थात् संत तुलसीदास जी ने फरमाया है कि मालिक का भजन जीव चाहे किसी भाव से क्यों ना करे, उसमें फायदा ही फायदा है। नुकसान तो कभी नहीं होता। चाहे कोई खुशी से मालिक का भजन करे या चाहे मन से न भी करे और न ही एकाग्रता से करा गया हो वह हर हालत में श्रेष्ठ होताहै। जैसे धरती में बीज चाहे उल्टा या सीधा पड़े, वह पैदा होने से रूक नहीं सकता। ठीक उसी प्रकार भजन स्मरण का फल भी कभी खाली नहीं जाता।

अध्याय - 7

परम भक्त अर्जुन को राज योग, ध्यान योग तथा सुरिति शब्द योग का रास्ता बताकर उनकी महिमा का भी वर्णन किया और फिर आगे इस अध्याय में श्री कृष्ण भगवान ने अपने शिष्य को विज्ञान योग तथा ईश्वरीय संबंधों का ज्ञान कराते हैं। जिसका वास्तविक अर्थ यह है कि योग्यों में वही श्रेष्ट होता है, जो प्रेमाभक्ति के साथ अपने इष्ट देव का ध्यान करते हुए योग अभ्यास में मन लगाता है। प्रेमाभक्ति के बगैर जो साधन किया जाता है, वह तीन गुणों अर्थात् सतो, रजो तथा तमो के दायरे में आता है। परंतु सच्ची भक्ति तो इन तीनों गुणों से परे है। जैसे मालिक का सत चित्त आनंदमय रूप इन तीनों गुणों से दूर की वस्तु है, उनका जाहिर करना, उनमें समा जाना या उनमें एक रूप हो जाना, तभी संभव हो सकता है जब साधक इन तीनों गुणों से आगे निकल जाए। इसलिए सत् पुरुषों ने प्रेमाभक्ति को उत्तम साधन बताया है। श्री कृष्ण भगवान ने भी प्रेमाभक्ति को, न केवल उत्तम कहा है, अपितु प्रभो को पाने का एकमात्र साधन कहा है। साथ ही इसे अति दुर्लभ भी माना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार इन आठों में यह प्रकृति बंटी हुई है। इन्हीं आठों से सारे संसार की रचना होती है और ये सब मालिक के आधार पर है। इस सारी रचना में ये तीनों गुण सतो, रजो तथा तमो ही है, जो जीव को भुलेखे में डालने वाले है। परंतु जो जीव इन तीनों गुणों से निकलकर ऊपर उठ जाते है, वे अपने इष्ट देव की शरण लेकर इस माया रूपी समुद्र से आसानी से पार हो जाते है। परंतु जो अज्ञान से या नासमझी से शरीर तथा इंद्रियों के विषयों में फँस जाते है, वे अपने असली मतलब से दूर हो जाते है।

तत्पश्चात् प्रभु ने फरमाया कि चार प्रकार के मेरे भक्त होते है- आरत, अर्थारथी, जिज्ञासी तथा ज्ञानी।

आरत : ये वे लोग है, जो संसार के दुखों से घबराकर मालिक का स्मरण करते है, जिससे उनके दुखों का निवारण हो।

अर्थारथी : ये वे लोग होते हैं, जो किसी ख्वाहिश के पूरे हो जाने के लिए

मालिक के नाम का जाप करते हैं।

जिज्ञासु : ये ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो प्रभु के निज स्वरूप को जानने के लिए स्मरण करते है।

ज्ञानी : ये लोग अपने इष्ट देव कुल मालिक को अपनी आत्मा जानकर अनन्य भाव से, प्रेमाभक्ति के अनुसार उनका ध्यान व पूजन करते हैं। उनको सच्चा प्रेमी भी कह सकते हैं।

वैसे तो ये चारों तरह के भक्त अच्छे है, परंतु उन सब में सच्ची प्रेमाभक्ति तथा अनन्य भाव से मालिक के ध्यान में मन लगाने वाले अर्थात् सच्चे ज्ञानी ही श्रेष्ठ होते हैं। इस प्रकार के प्रेमी हजारों में कोई एक होता है।

यहाँ श्री कृष्ण भगवान इस बात को स्पष्ट करते हैं कि अनन्य प्रेमाभक्ति से अधिक श्रेष्ठ मालिक को प्राप्त करने का कोई और तरीका नहीं है। इसका विशेष कारण यह है कि अनन्य प्रेमी के दिल में अपने इष्ट देव मालिक के अलावा, किसी और वस्तु की इच्छा नहीं होती। आरत, अर्थारथी तथा जिज्ञासु भी अपने-अपने स्थान पर सही है और यह कहना अनुचित न होगा कि उनका स्थान कोई कम नहीं, किंतु जिस दर्जे पर अनन्य प्रेमी की पहुँच होती है, वहाँ पर उन तीनों का पहुँच पाना कठिन होता है, क्योंकि आरत अपने दुखों के निवारण वास्ते प्रार्थना करता है और नाम के प्रताप से उनका दुख दूर हो जाता है। अर्थारथो भक्त धन पदार्थ आदि की कामना रखता है और उनको उस चीज की प्राप्ति होती है। जिज्ञासु भक्त मोक्ष या ज्ञान की ख्वाहिश रखकर मालिक से प्रेम करता है, उसे उस चीज की प्राप्ति होती है। उसमें कोई संदेह नहीं कि प्रभु का नाम कल्पवृक्ष की तरह हे और हर प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है परंतु विचार से सोचें तो ये संसार के धन पदार्थ या माल हमें केवल सांसारिक सुख, मान बढ़ाई दे सकते है। क्या इन सब से जीव का असली मकसद पूरा हो सकेगा ? कदापि नहीं। वास्तविक मकसद तो ये है कि मन में मालिक को पाने के सिवा और कोई कामना न रहे। मन कामना और इच्छा से रहित हो। और यह दशा केवल अनन्य प्रेमी भक्त को ही प्राप्त हो सकती है। उनके मन में मालिक के प्रेम के अलावा और कोई कामना नहीं होती। वह मालिक से केवल मालिक को ही चाहते हैं। इसलिए उनकी हालत सबसे उत्तम होती है।

इसलिए संतों ने सदा यह उपदेश दिया है कि मालिक के प्रेम के सिवा, अन्य किसी भी ख्वाहिश को अपने मन में स्थान न दें। क्योंकि संसार में ख्वाहिश और ख्यालका यही कानून होता है कि जिस चीज को हम मन में धारण करते है, उसका मनन करने लगते है और धीरे-धीरे वैसे ही नक्शे मन में उभरते है और हर तरफ उस ख्वाहिश के रंग-रूप नजर आने लगते हैं। इसी तरह वह ख्वाहिश अपने को बलवान बनाकर अपनी चाही हुई वस्तु को ख्वाहिश करने वाले के पास घसीटकर ले जाती है। यहीं उसूल और कानून है। झूठी ख्वाहिश का फल योनि और बुराई प्राप्त होती है। अच्छी, भलाई और कल्याणकारी ख्वाहिश करने पर अंतर में उस प्रकार की ताकत इकट्ठी होती है और धीरे-धीरे उनका रूप भी बन जाता है, जैसी इच्छा होती है।

''जैसी इच्छा - वैसी मनशा

जैसा ख्याल - वैसा हाल।''

आगे चलकर श्री कृष्ण भगवान ने फरमाया कि ''अज्ञानी पुरुष अपने स्वभाव के अनुसार उन भोग पदार्थों की कामनाओं में फँसकर सत मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं, परंतु ज्ञानी जन मन में श्रद्धा रखकर मालिक की पूजा करते हैं और उनकी श्रद्धा को कुदरत भी साथ देती है। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि मालिक हरेक जीव को अपनी श्रद्धा के अनुकूल फल देता है। बिना समझे पूजा का फल असत और नाशवान होता है। अर्थात् उनको अपनी इच्छित वस्तु तो मिलती है, किंतु उससे उनको मन की राहत नहीं मिलती। इसके विपरीत जो मनुष्य केवल मालिक के प्राप्ति की इच्छा मन में रखते हैं, वे मालिक से जा मिलते हैं और मुक्त रूप हो जाते हैं। आम लोगों की हालत का नक्शा सत पुरुषों ने इस प्रकार खींचा है-

''रत्न त्याग कौड़ी संग रचै, साच छोड़-जूठ संग मचै।
जो उड़िना-सु अस्थिर कर मानैं, जो होवन सो दूर परानै।
छोड़ जाइ तिसका स्रम करै, संग सहाई तिस पर हरै।
चंदन लेपु उतारे धोई, गरधब प्रीति भसम संग होई।
अंध कूप महि-पतित बिकराल, नानक काढि लेह प्रभ दइयाल।।''

(गुरबानी-सुखमनी साहिब)

बस! यही मनुष्य का धोखा है कि वह इन मायावी विषयों में फँसकर, नाशव तथा क्षणभंगुर सुखों के पीछे दीवाना होकर वास्तविकता को भुला देता है और जि कारण इस धरा पर आया है वह अधूरा रह जाता है। इसी गलतफहमी से संत महात हमें समय-समय पर चेतावनी देते हैं। उनका विचार है कि यह सारी अपने मन व दुविधा है। यह मन दोनों ओर से हमला करता है, परंतु दोनों चीजें तो कदापि हाथ न आती। यदि कोई चाहे कि मायावी पदार्थों को भी मन में बसा लें और मालिक का प्रे भी मन में रहे, तो यह संभव नहीं हो सकता। दोनों चीजें मन में कैसे समा सकती हैं वहाँ तो केवल एक ही वस्तु की ख्वाहिश या इच्छा मन में रह सकती है। यदि माया व इच्छा जोरदार है, तो माया मिलेगी, परंतु यदि भक्ति की इच्छा तेज है, तो भक्ति ही प्रा होगी। जो पुरुष श्रेष्ठ कर्मों का वर्णन करते है, या जिनका मन राग द्वेष आदि से मुक है या दृढ़ निश्चय वाले होत हैं, वे बिना देर ही मालिक के भजन में मन लगाते हैं अं इस तरह शरणागत होकर जन्म-मरण के दुखों से मुक्ति पा लेते है।

इस सातवें अध्याय में हमें यह शिक्षा मिलती है कि तीन गुणों वाली आठ किस की प्रकृति द्वारा ही इस संसार की रचना हुई है और एक दूसरी प्रकृति जो इससे श्रे है और जो जीव में चेतनता तथा प्राण डालने वाली है, इन दोनों का आधार मालिक व चेतन सत्ता है। इन तीनों गुणों और प्रकृति के आठ किस्मों में यह सारी दुनिया उलझक रह गई है। आम लोग अधिकतर इस माया से उत्पन्न हुए नाशवान सुख रस तथा भो को प्राप्त करने में व्यस्त रहते है परंतु जिन पुरुषों के पूजा का आधार ये मायावी पद होते हैं उनको इसका फल कुछ भी नहीं मिलता और जीव इन झूठे सुखों के चक्कर आकर वास्तविक सुखों से वंचित रह जाता है। परंतु हजारों में कोई एक, जो जीवन असली मकसद को समझकर, उसके लिए यत्न करता है और उन हजारों में कोई ए जीव ही कुल मालिक के प्रेम तत्व को जानकर, उनसे जा मिलता है। इसी को जीव मुक्ति या परम पद कहते हैं, जिसके लिए सत पुरुष उपदेश करते हैं।

''करे कराये आपे आप।

मानुष के कछु नाहीं हाथ।।''

अध्याय - 8

अब इस आठवें अध्याय में श्री कृष्ण भगवान अपने शिष्य अर्जुन को अक्षर ब्रह्म या कुल मालिक परम पुरुष के भक्ति भाव सहित सेवा का सिद्धांत बतलाते हैं। अर्जुन के सवालों के उत्तर में हर चीज को विस्तार से समझा रहे है। वे अर्जुन को कहते है कि जो कभी नाश नहीं होता और जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, और जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, वही कुल मालिक है और उसी को ही परब्रह्म या परम पुरुष कहा जाता है। यह जो जन्म-मृत्यु का सिलसिला है, उसका संबंध कर्मों से होता है। जो पुरुष अंत समय नाम का स्मरण करते हैं, वे कुल मालिक को प्राप्त कर लेते हैं। परंतु जो पुरुष अंत समय किसी अन्य वस्तु का ध्यान करते है, वे उसी चीज को पाते हैं। मालिक की प्राप्ति के लिए गहरे चितवन, ध्यान और स्मरण की जरूरत होती है। अपने मन के विषयों को सब ओर से रोककर मालिक के स्वरूप में एकाग्र करने से ही उसमें सिद्धि प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् श्री भगवान ने अर्जुन को कई अन्य तरह के भक्ति के स्वरूप बाबत समझाते हुए कहते है कि, ''कुछ लोग कर्म को प्रधान मानकर भक्ति करते हैं, कोई ज्ञान को, कोई योग को, तो कोई-कोई विशुद्ध श्रद्धा या अनन्य प्रेम को प्रधान मानकर, भक्ति में अपना मन लगाते हैं। वही प्रेम वाला आदर्श भक्ति का सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। सब लोक, उनके प्राणी, यहाँ तक कि ब्रह्मलोक के प्राणी भी जन्म-मृत्यु के चक्कर में आ जाते है। किंतु जो लोग पूर्ण रूप से अर्थात् संसार के सारे संबंधों को त्यागकर केवल ईश्वर की शरण में आ जाते हैं और एकाग्र श्रद्धा रखकर भक्ति के मार्ग को ग्रहण करते हैं, वे ही इस आवागमन के चक्कर से मोक्ष पा लेते है। महाप्रलय के समय सब लोगों का नाश होता है, परंतु उन सबके नाश होने पर भी जिनका नाश नहीं होता, वे ही उस कुल मालिक का स्वरूप होते है। जिस पुरुष का मन कुल मालिक के साथ एकाग्र होता है, वह कभी नाश नहीं हो सकता। जो पुरुष संपूर्ण विश्वास के साथ निष्काम भक्ति मार्ग का पालन करते हैं, उनको वह सब नहीं भोगना पड़ता, जो आम लोगों को भोगना पड़ता है। बल्कि ऐसे पुरुष अंत समय कुल मालिक के आनंदमय स्वरूप में विलीन होकर, उनको ही प्राप्त होते है।

इस अध्याय में अर्जुन बहुत अधिक सवाल पूछते हैं। वे कहते हैं, "हे प्रभु! क
करके बताएं कि कुल या अंश किसको कहते हैं? और कर्मों से आपका क्या तात
है? इसके अतिरिक्त नित्य और अनित्य की बात कर रहे है, इसका क्या अर्थ है
अर्थात् मनुष्य शरीर में कौन-सी वस्तु लगाव पैदा करती है? तथा अंत में अभ्या
पुरुष को किस चीज का ध्यान करना चाहिए? यह भी स्पष्ट करें।"

उत्तर में श्री कृष्ण भगवान ने फरमाया "हे अर्जुन! जो कभी नाश नहीं होता अ
सदा बना रहता है, वह केवल आत्मा है। वो कुल मालिक का अंश है। कर्मों
भिन्न-भिन्न रूपों के अनुसार जन्म-मरण तथा स्थिति के हालात उसी कुल मालिक
अंश में पैदा होते है। इसीलिए जीव को सदा उस कुल मालिक से लगाव रखना चाहि
क्योंकि अंत समय जो पुरुष अपनी सुरिति को मालिक के याद में रखते हुए, शरीर
त्यागते हैं, वे उनको ही प्राप्त होते हैं। यह एक कुदरत का नियम है। इसलिए हे अर्जु
तुम युद्ध के फर्ज को पालन करते समय अपने अंतरमन में अपने इष्टदेव की य
समाकर रखो, ताकि उनके स्वरूप में समा जाओ। ऐसे ही स्मरण ध्यान से चित्तवृ
एकाग्र होती है और वह मनुष्य अभ्यास की बरकत से मालिक के स्वरूप में स
जाता है।"

तत्पश्चात् फिर फरमाते हैं कि जो मनुष्य मन के आंतरिक तथा बाह्य ख्वाहि
को रोककर अपनी इंद्रियों के द्वार बंद कर अपने मन को रोकता है और अभ्यास
साधन से श्वांसों को मस्तक में चढ़ाकर, दृढ़ निश्चय होकर मालिक के स्मरण में ल
हो जाता है, इस तरह वह शरीर के त्यागने के बाद परम गति वो प्राप्त करता है। अ
मालिक के स्वरूप में मिलकर एक रूप हो जाता है। इस प्रकार दुख के घेरे
निकलकर आवागमन के चक्कर से दूर हो जाता है।

जन्म-जन्मांतर से यह जीव अपने कुल मालिक से बिछुड़कर जो दुख को भ
रहा है, उसका कारण केवल मनुष्य की झूठी ख्वाहिशें तथा इंद्रियों के रस भोग ही
उन्हीं के पीछे लगकर यह जीव आत्मा अपने वास्तविक उद्देश्य से भटककर, माया
अधीन होकर, विषय-विकारों में फँसकर, अपनी आस्थिता, शांति तथा आनंद को
देता है। वैसे भी देखा जाए तो मन का झुकाव सदा इन मलीन रसों की ओर रहता
क्योंकि उसको उसमें ही सुख और आनंद मिलता है। उसी सुख और आनंद की तल

में मन विषयों और ख्वाहिशों को पैदा करता है और फिर ख्वाहिशों और वासनाओं को बढ़ाते-बढ़ाते वह एक मजबूत जाल की तरह फैलता जाता है। और यह जीव बेचारा, बेबस होकर उस जाल में फँस जाता है। यही दुख तथा अशांति का कारण होता है। अभ्यास द्वारा चित्त को एकाग्र करने का साधन बताया है, जो स्वयं श्री कृष्ण भगवान, अर्जुन को बता रहे है।

इसके बाद श्री कृष्ण अर्जुन को आगे बताते हैं कि, ''सारे लोक, यहाँ तक कि ब्रह्मलोक भी बदलाव के चक्कर में आता रहता है। ब्रह्मा के दिन होने पर यह सारी सृष्टि उत्पन्न होती है और उसकी रात होने पर प्रलय आती है। इस प्रकार यह सारी सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय के चक्कर में आती रहती है। परंतु जिसने अपने मन को कुल मालिक के साथ एकाग्र किया है, वह इस चक्कर में नहीं आंता क्योंकि मालिक की जात इस आवागमन के चक्कर से निर्लेप तथा आजाद़ है। माया और प्रकृति के गुण तथा स्वभाव उन पर अपना असर नहीं डाल सकते।

यह एक निश्चित वास्तविकता है कि जो जीव मालिक की भक्ति तथा नाम स्मरण में लगे रहते हैं, वे सदैव काल कर्म तथा माया के चक्कर तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि की मार से बचे रहते हैं। काल और माया का संसार में बड़ा असर होता है। उनकी बहुत प्रबल शक्ति होती है और अधिकतर लोग उनकी जोरदार शक्ति के अधीन हो जाते हैं। ये दोनों काल तथा माया और उनके दूसरे एजेंट अर्थात् मलीन विचार, वासनाएं और कामनाएं आदि, अनेक तरह की रचना रचाकर, जीवों को अपने मोहजाल में फँसाते रहते हैं। आम लोग अज्ञानता और बेसमझी के वश में आकर उस मोहिनी रचना के चक्कर में आ जाते है। इस प्रकार अपने असली मकसद से हटकर माया के चंगुल में लोग फँस जाते हैं। परंतु जो लोग नाम और भजन में मन लगाते हैं, उनके रास्ते में माया और काल की शक्तियां मिलकर भी कोई अड़चन नहीं डाल पाती।।

''उनको खसम ठाक हारे

दास संग ते मार बिदारे।

गोबिन्द भक्त का महल न पाया

राम जिना मिल मंगल गाया।
सगल सृष्टि के पांच सिकदार
राम भक्त के पानी हार।
जगत पास ते लेते दान
गोबिंद भक्त को करहिं सलाम।
लूट लेह साकत पति खोवहि
साध जना मलि पग-पग धोवहि।
(गुरुबाणी)

अर्थात् गुरु साहिब फरमाते हैं कि काया, माया और उनके मलीन विकारों कुदरत ने भक्ति मार्ग में अड़चन डालने के लिए ही बनाया है और वे सब जीवों को मार्ग पर चलने से रोकते हैं, परंतु मालिक के सच्चे भक्तों के संगत में जाकर जीव रूहानी दुश्मनों को मार भगाता है। जहाँ पर मालिक के भक्तों की पहुँच होती है, उनका वश नहीं चल सकता। पाँच विकार यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहं सारी सृष्टि पर अपना राज चलाते हैं, परंतु भक्तों के दर पर वे पानी भरने वाले भि बन जाते है। सब लोगों से वे दंड वसूल करते है, परंतु ईश्वर के भक्तों को वे सल करते हैं। मनमुखों को वे लुटेरे लूटते रहते हैं, परंतु साधु-संतों के चरणों को वे धो-कर पीते हैं।

गुरु साहिब फरमाते हैं-

"ठगने को तो सब चले
माया काल-कराल।
गुरमुख प्रेमी-भक्त पर
चले ना एको चाल।

अर्थात् यह संसार रूपी माया और काल आम लोगों को तो अपनी जाल फँसाकर दुखी करते है, किंतु सच्चे भक्तों पर उनकी चाल का कोई असर नहीं हो

चौपाई

"जारा नगर निमख खिन माहीं
एक बिभीषण के ग्रह नाहीं।
जाकर भक्त अनल जन सिर्जा
जरा ना सो तेही कारण ग्रजा।।"

मतलब यह है कि शिवजी महाराज फरमाते हैं कि "हे गिरिजा! सुनो तो, यह एक देखने योग्य दृश्य था कि भक्त हनुमान द्वारा लगाई हुई आग से सारी लंका नगरी जल रही थी, परंतु इस नगरी में दुष्ट रावण का भाई विभीषण भी रहता था, जो भगवान का सच्चा भक्त था, उनके घर को अग्नि का जरा भी सेंक नहीं आया, जबकि सारे मकान एक दूसरे से मिले हुए थे। इसका कारण शिवजी बतलाते है कि क्योंकि जिसकी बनाई हुई वह अग्नि थी उसका वह भक्त था। ठीक उसी प्रकार यह सारा संसार काम क्रोध आदि की भयानक आग में जल रहा है, परंतु प्रभु के भक्तों पर उसका कोई असर नहीं पड़ता। सच्चे भक्तों के आगे माया, काल, काम तथा क्रोध आदि अपना बल हार जाते हैं और उनसे डरकर दूर भाग जाते हैं। यही बात श्री कृष्ण भगवान अपने शिष्य अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि जिस मालिक के अंदर ये सारे भूत प्राणी निवास करते है। और जिस सचिदानंद प्रभु से यह संसार भरपूर है, उस मालिक की प्राप्ति से अनन्य प्रेमाभक्ति के द्वारा ही सुगम है।"

आगे फिर श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि, "इस संसार में दो रास्ते हैं, जिनके द्वारा अंत समय अलग-अलग गति प्राप्त होती है। एक तो वापस आने वाला रास्ता है और दूसरा परम गति की प्राप्ति। इसलिए हर मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह दोनों रास्तों को अच्छी तरह से सोच-विचार कर ऐसा रास्ता अपनाए जो उत्तम हो और जिसको अपनाकर मनुष्य आवागमन के चक्कर से निकलकर परम पद को प्राप्त कर सके।"

इस प्रकार इस आठवें अध्याय में श्री कृष्ण जी भक्त अर्जुन को अलग-अलग तरह के साधनों और कर्मों वाली भक्ति तथा विभिन्न प्रकार से भरी एकाग्रचित्त द्वारा विश्वास और श्रद्धा से भरपूर प्रेमाभक्ति को उत्तम और श्रेष्ठ बतलाते हैं। ऐसी ही

एकाग्र चित्त द्वारा विश्वास और श्रद्धा से भरपूर प्रेमा भक्ति को उत्तम और श्रेष्ठ बतल
हैं। ऐसी ही एकाग्र चित्त वाली अनन्य भक्ति में लगे हुए पुरुष किसी भी प्रकार के क
बंधन या कर्म फल से दूर रहता है। जब चित्त में अनन्य प्रेम पैदा हो जाए तो फिर मा
और मलीनता का नाश समझो। वास्तव में प्रेमाभक्ति ही सबसे उत्तम साधन है, जिस
द्वारा मन को एकाग्र करके, दृढ़ निश्चत धारण करके यह जीव हर तरह से निर्भ
निर्विघ्न और निर्विकार होकर जल्द अपने मालिक से जा मिलता है। वैसे और साध
भी है, परंतु चित्त को हर तरह से निर्मल और पवित्र बनाने के लिए प्रेमाभक्ति जै
सुगम और सरल दूसरा कोई उपाय नहीं।''

अध्याय - 9

इस नवें अध्याय में राज-गूढ़ योग अर्थात् ज्ञान के रहस्यमय सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। इसमें श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को उन अति गुप्त भेदों से अवगत कराते हैं, जो सारे सिद्धांतों से श्रेष्ठ है और वास्तव में मालिक की प्राप्ति का सच्चा रास्ता है। जिनकी श्रद्धा मालिक के चरणों में नहीं है, वे इस सिद्धांत को नहीं पा सकते। क्योंकि रूहानियत या भक्ति का बुनियाद तो हृदय की श्रद्धा तथा विश्वास पर ही निर्भर रहता है। श्री कृष्ण भगवान बतलाते हैं कि वह कुल मालिक ही सबका रक्षक और पालनहार है। इस सारी सृष्टि की सारी रचना में जो कुछ भी दृश्यमान है, उन सब का आधार केवल वे ही है, परंतु वे स्वयं उससे निर्लेप है। प्रलय के समय सब जीव उस कुल मालिक की प्रकृति में लय होते हैं और नए कल्प में फिर उनकी रचना होती है। उस सारे परिवर्तन का उस मालिक पर कोई असर नहीं पड़ता क्योंकि वे इस प्रकृति से अलग है। इस मृत्युलोक में जन्म लेने पर भी उनका स्वरूप वहीं आनंदमयी होता है। अज्ञानी और माया के वश में आए लोग मालिक के उस मानुष अवतार वाले रूप को नहीं पहचानते। ऐसे माया में लिप्त या दूसरे शब्दों में कहें कि माया के गुलाम लोग इस बात को भूल जाते हैं कि कुल मालिक ही सबका स्वामी और देवों के भी देव है। उस स्वरूप को तो केवल वे ही जान पाते हैं जिनके हृदय में सच्चा प्रेम भरा हो। ऐसे जीव ही उस स्वरूप को पहचानकर, एकाग्रचित्त से उसकी सेवा, पूजा तथा स्मरण करते हैं। धार्मिक शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि सकाम कर्मों के करने वाले, सोमरस का पान करने वाले तथा यज्ञ आदि शुभ कर्म करने वाले मनुष्यों को भी स्वर्ग के सुखों की प्राप्ति होती है और उनके कर्मफल भोगने के बाद, फिर उन्हें इस संसार में जन्म लेना पड़ता है। परंतु इसके विपरीत एकाग्र चित्त से प्रभु की भक्ति में लगाए हुए मन वाले जीवों को यह आवागमन का दुख नहीं देखना पड़ता। क्योंकि उन लोगों का प्रेम मालिक के चरणों में नित रहता है। वे संसार की हर कामना से दूर रहते हैं, इसलिए मालिक का उन भक्तों के प्रति स्नेह रहता है और वे स्वयं उनके हर इच्छा को पूर्ण करते रहते हैं। ऐसी दशा में उन लोगों को फिर और किस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है? सच तो यह है कि, अपने प्रेमी भक्तों

को जिस चीज की आवश्यकता हो उसकी प्राप्ति भी वे ही करा देते हैं और जो कुछ उ
प्राप्त है, उसकी रक्षा भी वे स्वयं ही करते हैं। बदले में उन भक्तों द्वारा जो भी पत्र, पु
जल या फल अर्पण किया जाता है उसे वे सहर्ष स्वीकार करते हैं। दूसरे देवताओं
पूजने वाले अंत समय उन्हीं देवताओं को प्राप्त करते हैं परंतु मालिक की सच्ची अ
निष्काम भक्ति करने वाले लोग स्वयं कुल मालिक को पा लेते हैं। सच्चे भक्त अप
सारी क्रिया अर्थात् वे जो कुछ खाते-पीते है, दान-पुण्य करते है या यज्ञ तपस्या आ
कार्य करते हैं, वो सब कुछ अपने मालिक को अर्पण करते जाते है। इसीलिए उन
कोई भी कार्य बंधन रूपी नहीं होता। इसी प्रकार वे अपनी सभी ख्वाहिशों को त्याग
अर्थात् कर्म मालिक के निमित्त करते हुए सबसे भिन्न रहकर मालिक के स्वरूप
मिलकर एक हो जाते हैं। अंत में श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को यह उपदेश देते हैं कि '
प्रिय अर्जुन! अपने चित्त को एकाग्र करके सदा मालिक की भक्ति में मग्न रहो त
अपने क्षत्रिय धर्म का पालन भी करते चलो। अपने हरेक कार्य को मालिक के निमि
करते हुए, हर समय उनका ही ध्यान करो। जब इस तरह तुम करने लगोगे तो यकी
उनको ही पाओगे और एक सच्चे सेवक की तरह मालिक के धाम में पहुँचोगे।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण भगवान ने फरमाया कि "हे अर्जुन! अब हम तुझे वह ग
ज्ञान बताएंगे जिसे समझकर तुम इस दुख पूर्वक संसार से मुक्त हो जाओगे। यह स
विधाओं का राज है और बहुत गूढ़ भेदों से भरा है। यह मनुष्य को पवित्र करने वाल
और ना केवल उत्तम धर्म वाला है, परंतु इसकी साधना करना भी आसान है। इस
फल भी अविनाशी है। जो पुरुष इस गूढ़ ज्ञान में श्रद्धा नहीं रखते, वे कदापि मालि
को प्राप्त नहीं कर सकते। इसी तरह वे जन्म-मरण के बंधन में आ जाते हैं। भक्ति
वास्तविक अर्थ तो केवल थोड़े भाग्यशाली लोग ही जान पाते हैं। ऐसा कहना अनु
न होगा कि भक्ति का वह भेद वे ही जान सकते है, जिन पर अपने गुरू की अपार कृ
होती है। इस पवित्र संदेश के आरंभ में ही बताया गया है कि श्री कृष्ण भगवान ने भ
अर्जुन का रूहानी गुरू बनने के बाद ही उनके भलाई के लिए तथा दुखों और बंधनों
मुक्त करने के लिए ही यह गीता का उपदेश (ज्ञान) देना आरंभ किया था। यह ए
रूहानी ज्ञान है और इसको समझने से जीव जन्म-मरण तथा काल-कर्म के सभी बंध
से आसानी से छूट जाते हैं। संतों के मतानुसार इसे परिचय ज्ञान भी कहा जाता
जिसका अर्थ है मालिक के असली स्वरूप की जानकारी।

कुल मालिक मनुष्य रूप में अवतार धारण करके हम जीवों के कल्याण के वास्ते हमें प्रेमाभक्ति के साधन में लगाते हैं। कभी वे संत-महात्माओं या सत्‌गुरू के रूप में भी आते हैं। जो जीव उनके असली स्वरूप को पहचान लेते हैं, वे उनके वचनों की पालना करके, एकाग्र मन से श्रद्धा और विश्वास रखकर उनकी भक्ति में लग जाते हैं। और इस प्रकार वे अपना जीवन संवार देते हैं। सच तो यह है कि मालिक के रूप में वे हमें अपनी मंजिल तक पहुँचाने के लिए ही होते हैं। मनुष्य रूप में रहकर और मनुष्य रूपी लीलाएं करते हुए भी उनका असली रूप वही आनंदमय होता है। जिन लोगों ने उनसे हृदय से प्रेम किया, वे उनके प्यारे हो चुके। इस प्रकार उन मालिक के प्यारों को फिर किसी बात की कमी नहीं रहती।

दोहा

अलख पुरुख की आरसी
संतो की ही देह।
लिखा चाहे जो अलख को
इन में ही लिख लेह।।

परम संत कबीर साहिब फरमाते हैं कि अलख पुरुष कुल मालिक को देखने का आईना संत-महात्माओं का शरीर ही होता है। क्योंकि प्रभु तो अलख है। जिसे हम इन बाह्य आंखों से नहीं देख सकते, परंतु ये संत-महात्मा ही प्रभु का स्थूल शरीर होते हैं। इसलिए जिनको प्रभु का साक्षात् दर्शन करना हो वे संतों की देह में ही उनका दर्शन कर सकते हैं। वही उनका असली और सच्चा स्वरूप है।

श्री कृष्ण भगवान अपने समय के अवतार थे और उस चलते समय के संत महापुरुष भी थे। इसलिए उस समय जो लोग भी उनसे सच्चा प्रेम का नाता रखते हैं, वे अवश्य पार हो जाते हैं, इसमें जरा भी संदेह नहीं। यह भी याद रहे कि उस खास समय के बीत जाने के बाद कुछ भी हासिल नहीं होता। क्योंकि उस चलते समय में जीवों का उद्धार करना भी उन महापुरुषों के हाथ में ही होता है। उस खास भेद को जाहिर करने के लिए श्री कृष्ण भगवान ने भक्त अर्जुन को बताया कि मैं ही इस सारी सृष्टि को अपनी कुदरत से उत्पन्न करता हूँ और इस प्रकार सारा संसार मुझमें समाया हुआ है,

परंतु मैं स्वयं उसमें नहीं हूँ अर्थात् मैं उस सारी रचना से आजाद हूँ। मैं ही सारी स्
का आधार भी हूँ और सब जीवों में बसा हुआ हूँ फिर भी सबसे भिन्न हूँ। जो लोग
इस असली भेद को जानते है, वे सदा मेरे से ही अपनी प्रीत लगाते हैं और अंत में
ही प्राप्त करते है।''

यही वास्तव में परीची ज्ञान है। और यही भक्ति का उच्च मकसद भी है
कुल मालिक के स्वरूप की पहचान हो और जब उसकी पहचान हो जाए तो फिर उ
ही प्रीत लगानी चाहिए। इसके अतिरिक्त जो भी प्रकृति देखने को मिलती है, वह
परिवर्तनशील है। यह भी एक विश्वसनीय चीज है कि जब तक किसी चीज की
जानकारी नहीं होती, उससे पूरा-पूरा लाभ उठाना भी कठिन है। प्यार और मुहब्बत
बगैर यह संभव नहीं। इसलिए सबसे पहले हमें पहचान की आवश्यकता है और जि
यह पहचान कर ली, उसने मानो सब कुछ हासिल कर लिया। परंतु जो इससे वं
रहा, वह जीव सदा भटकता रहता है। वह मालिक से बिछुड़कर जन्म-मरण के चक
में आ जाता है।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण भगवान फिर बोले कि, ''मैं ही सब जीवों का आधार
हूँ। मेरे इस ऊँचे भाव को ना जानने वाले मूर्ख लोग मेरे मनुष्य रूप धारण किए अव
को मालिक का रूप नहीं मानते है। यानी प्रकृति की रचना द्वारा संसार के उद्धार
लिए मनुष्य रूप में प्रकट हुए, मुझको एक साधारण मनुष्य ही समझते हैं। वे व्यर्थ
आशाओं, व्यर्थ के कर्म और व्यर्थ के ज्ञान को धारने वाले अज्ञानी मनुष्य राक्ष
स्वभाव के होते है और माया की रचना में भूलकर पाप और दुराचार करते हैं। किंतु
देवों के प्रकृति का सहारा लेकर मेरे जिज्ञासु और भक्त हैं, वे कुल मालिक को हर
से हर्ता, करता तथा सारी सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला व पालन-पोषण करने व
तथा विनाश से रहित सत्स्वरूप मानकर अनन्य भाव से उसका भजन करते हैं।
संकल्प वाले सच्चे भक्त मालिक के नाम का भजन कीर्तन करते हुए सदा मालिक
ध्यान में अनन्य भक्ति तथा प्रेम सहित लवलीन रहते हैं। उनके ध्यान में प्रभु के ध
के सिवा बाकी सब तुच्छ या बेमोल प्रतीत होता है।''

यही वास्तव में सच्चे भक्तों का आदर्श होता है, जिसका ऊपर वर्णन कि
गया। यह भी एक मानने योग्य बात है कि जिस वस्तु की जोरदार ख्वाहिश मन में ह

है उस पुरुष को वही प्राप्त होती है। धन-दौलत की ख्वाहिश वाले को धन की, मान मरतबे वाले को मान तथा जिस्मानी ख्वाहिशों वालों को उस चीज की पूर्ति हो जाती है। किंतु मालिक के सच्चे सेवक का दर्जा इससे ऊँचा होता है। वे तो मालिक से केवल मालिक को ही चाहते हैं। आम संसारी लोग तो माया की पूजा करते है, परंतु मालिक के पुजारी या भक्त बहुत कम अर्थात् नगण्य मात्र होते हैं। इन्हीं लोगों के वास्ते सत्पुरुषों ने अपनी वाणी में कहा है-

''कोट मघे को बिरला सेवक।
होर सगले व्योहारी।।''

अर्थात् करोड़ों में कोई एक जीव मालिक के सच्चे भक्त होते हैं, शेष सारी दुनिया तो केवल सांसारिक विषयों में ही लिप्त रहते हैं।

यह एक कटु सत्य है कि मालिक की इच्छा के बगैर जीव के मन में यदि कोई अन्य कामना होती है तो उसका नतीजा दुख और परेशानी के सिवा और कुछ भी नहीं। इच्छा के अनुसार ही जीव को प्राप्ति होती है, यह कुदरत का नियम है। इसको कोई बदल नहीं सकता। यदि मन में ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा है तो वे अवश्य मिलेंगे, परंतु यदि मन में किसी संसारी पदार्थ को पाने की कामना है, तो वे ही मिलेंगे। मालिक की प्राप्ति में सच्चा सुख और आनंद है, परंतु मायावी पदार्थों में दुख, चिंता, क्लेश, कष्ट, बंधन और नरक है। इसलिए हर मनुष्य को अपनी जिंदगी का मकसद निर्धारित करना चाहिए और फिर उस प्रकार आचरण करना चाहिए।

ख्याल से ही मनुष्य सब कुछ कर सकता है। ख्याल में जैसी ख्वाहिश होगी, परिणाम भी वैसा ही होगा। यदि ख्यालों में संसारी सुखों और नफसानी विषयों ने स्थान ग्रहण किया है तो, बदले में दुख, परेशानी और बंधन ही प्राप्त होगा। परंतु यदि ख्यालों में मालिक का ध्यान और उससे मिलने की लग्न है तो परिणाम में सदा के लिए खुशी आनंद और जन्म-मरण से आजादी मिलेगी।

श्री कृष्ण जी फरमाते हैं कि, ''फल की इच्छा मन में रखकर किए हुए शुभ कर्म भी अपना फल अवश्य देते है और ऐसे कर्म करने वाले मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुसार स्वर्ग के सुख भोग की प्राप्ति हो सकती है, परंतु वास्तविक लाभ नहीं होता।

वह सुख थोड़े समय के लिए मिलता है और जब उस शुभ कर्म का फल समाप्त हो
है, तो फिर वही जन्म-मरण का चक्कर, दुख, बंधन आदि मौजूद रहते हैं। आजादी
फिर भी न मिली। अब जरा विचार से काम लेकर देखें कि थोड़े समय के सुख
खातिर सदा पाने वाली खुशी को कुर्बान कर देना कहाँ की शराफत है। यही संतों
उपदेश है कि जब सच्चे और स्थायी सुख की लगन है तो क्यों नहीं उसकी तलाश कर
उसको हासिल किया जाए ताकि फिर दुख का दीदार न हो। अब सवाल यह उठता
कि ऐसा सुख कहाँ से मिलेगा? इसका उत्तर है कि सच्चा और स्थायी सुख तो केव
मालिक की लगन और सच्ची तड़प में मिलता है। जो पुरुष मालिक के स्वरूप में स्थि
होकर उनके स्मरण-ध्यान में व्यस्त रहते हैं, वे अपने मन में अटल विश्वास और श्र
धारण करके, संसारी तथा जिस्मानी ख्वाहिशों को त्यागकर सदा मौज और मस्ती
रहते हैं। ऐसे लोगों के सुख आदि की चिंता स्वयं प्रभु ही करते हैं।''

अब जरा दोनों तरह की हालतों पर यदि विचार किया जाए तो दोनों में बहुत ब
अंतर है। वे ही संसारी सुख और मायावी पदार्थ, जिनके पीछे सकामी पुरुष दीवानों
तरह घूमते-फिरते हैं, निष्काम भक्त के पीछे वे सारे पदार्थ स्वयं उनकी मंजूरी के लि
दौड़ते-फिरते हैं। अब क्योंकि उन भक्तों के मन में केवल मालिक के पाने की चाह
होती है, इसलिए वे लोग इन धोखेबाज दोस्तों से दोस्ती रखना उचित नहीं समझते।
लोग तो केवल प्रभु के प्रेम के प्यासे होते है और उनमें ही प्रसन्नचित्त रहते है। नतीजे
वे मालिक को ही पा लेते हैं। इसलिए भगवान श्री कृष्ण अपने भक्त अर्जुन को कह
हैं कि, ''तुम जो कर्म करते हो, जो कुछ भोजन करते हो, जो कुछ हवन करते हो,
कुछ भी दान करते हो या अपना धर्म समझकर जो पूजा-पाठ और तपस्या आदि कर
हो वे सब मालिक को अर्पण कर दो। इस प्रकार मालिक को अर्पण करके तुम निष्का
भाव वाला बन जाएगा और योग मुक्त होकर शुभ तथा अशुभ कर्मों के बंधन से मुक
होकर मालिक को प्राप्त करोगे। जो पुरुष इस प्रकार अपना सर्वस्व मालिक को अर्प
कर देता है, उसके मन से अहंकार दूर हो जाता है और जब मन से अहंकार दूर हो ग
तो फिर मालिक से मिलने में विलंब कैसी?''

आगे चलकर श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि, ''जो मनुष्य बहुत बड़ा पापी
जालिम या दुर्व्यवहार करने वाला ही क्यों ना हो, परंतु एक बार वह अनन्य भाव

मालिक को अपना जानकर उसका भजन, सेवा आदि एकाग्र मन से करता है तो वह भी साधु मानने योग्य है। क्योंकि उसने वास्तव में यह जान लिया है कि मालिक के भजन, सेवा और स्मरण के मुकाबले में बाकी सब व्यर्थ है। उसी प्रकार वह सेवा के असर से जल्दी ही शुभ विचारों वाला बन जाता है और स्थायी सुख तथा शांति को प्राप्त कर लेता है।''

''हे अर्जुन! तुम यह निश्चयपूर्वक जान लो कि सच्चे भक्त का कभी विनाश नहीं होता। यहाँ तक कि वह चाहे स्त्री, वैश्य, शूद्र आदि पापी जालिम या दुष्ट क्यों ना हो, वह भी एक बार यदि प्रभु की शरण में आ जाएगा तो भी यकीनन परम गति को प्राप्त कर सकता है। फिर शुभ कर्मों के करने वाले भक्त तथा ऊँचे कुल में जन्म लेने वालों और राज ऋषियों की तो बात ही क्या है? वे तो अवश्य परम गति को प्राप्त करेंगे। इसलिए हे अर्जुन! तुम सदा इस शरीर द्वारा मालिक का भजन कर और केवल उस सचिदानंद स्वरूप मालिक से अनन्य प्रेम रखकर, उसमें ही अपने मन को लगाकर रखो। श्रद्धा और प्रेम से मालिक का पक्का भक्त बन जा। इस प्रकार तुम मालिक की शरण लेकर, उसकी सच्ची भावना में रहकर उनकी प्राप्ति कर सकोगे।''

तात्पर्य यह है कि भक्त का स्थान सबसे ऊँचा होता है और मालिक भक्ति से प्रसन्न रहते हैं। जो पुरुष सच्चे मन से मालिक की प्राप्ति में लगे रहते है, वे ही संसार में इज्जत, मान, बढ़ाई तथा शोभा के पात्र बन जाते है। इसलिए श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि, ''यह मानुष शरीर अति दुर्लभ है, परंतु साथ ही यह नाश्वान भी है और सुख से रहित भी है। इसलिए काल का भरोसा न रखकर सुखदाई लगने वाले विषयों तथा भोगों को मन से हटाकर, अनन्य भाव से सदा मालिक के भजन में लगा रहना चाहिए।''

अध्याय - 10

इस अध्याय में जिसका नाम विभूति योग है, भगवान की मनोहर लीलाओं का सुंदर वर्णन किया गया है। इसमें श्री कृष्ण भगवान बता रहे हैं कि, "केवल मैं ऋषियों मुनियों के साथ मिलकर इस सृष्टि की रचना करने वाला हूँ, किंतु बहुत लोग मेरे इस देवी प्रकृति वाली रचना के भेद को नहीं जानते। वे मेरे द्वारा अवतार धार कर संसार में आने और मानुष लीला के अनेक भेदों से भी अनभिज्ञ रहते हैं। परंतु पुरुष मेरे इस भेद को जानकर मुझे उस रचना से निर्लेप और श्रेष्ठ मानते हैं त जन्म-मरण से रहित जानते है, वह संसार के सारे बंधनों से मुक्त रहता है और मेरी द दृष्टि से वे सारे पापों से मुक्ति पा लेता है। जो पुरुष छल कपट रहित और पूरे विश्व सहित कुल मालिक की पूजा करते हैं जो उन्हें इस संसार का हर्ता-कर्ता समझते हैं अ साथ में यह भी जानते हैं कि प्रभु की कृपा से ही हर वस्तु शोभा को प्राप्त करती है, लोग ही संसार में रूहानी ज्ञान को जानने वाले कहे जाते हैं। तत्पश्चात् भगवान फरम हैं कि, "मैं ही संसार की हर वस्तु में उत्तम और विशेष हूँ। अर्थात् जो चीज संपा ताकत, बढ़ाई और प्रकाश में सबसे खास होती है, वह सब मालिक के तेज से उत्प हुआ समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी कहा कि, हर वस्तु में केवल कु मालिक का तत्व ही समाया हुआ है और उससे अलग कोई चीज हो ही नहीं सकती।

सारी सृष्टि को पैदा करने वाला भी वही कुल मालिक है और सारा जगत उन ही स्थित रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष मालिक को आदि तत्व मानकर उनकी भवि भाव में अपने मन को लगाते हैं। वे लोग सच्ची भावना से मन को लगाकर अपने त मन तथा प्राण को मालिक के अर्पण करके सदा मालिक के भजन में मग्न और विली रहते हैं। ऐसे किस्म की भक्ति करने वालों को मालिक बुद्धि योग की बख्शीश क हैं, जिसके द्वारा वे लोग मालिक से बहुत आसानी से मिल सकते हैं। इस प्रकार ऐ सच्चे भक्तों पर मालिक की खास नजर होने के कारण उनके हृदय में सच्चे ज्ञान क प्रकाश हो जाता है और अज्ञान रूपी अंधेरा दूर हो जाता है।"

अब इस अध्याय का खास मतलब बताते हुए श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि "हे अर्जुन! तुम्हें अधिक बेकार की बातों में जाने या उन्हें समझने की जरूरत नहीं। मोटे हिसाब से यह समझो कि सारी सृष्टि का आधार वह कुल मालिक ही है और सच्ची श्रद्धा, विश्वास तथा प्रेम सहित उनकी भक्ति करना और अपना सर्वस्व उनको अर्पण कर देना ही मनुष्य का सबसे उत्तम और लाभदायक कर्तव्य है।

अध्याय - 11

इस ग्यारहवें अध्याय में श्री कृष्ण भगवान के विराट स्वरूप का वर्णन भगवान जी अपने भक्त अर्जुन पर कृपा करके उन्हें अपने विराट स्वरूप का द कराते हैं। उस स्वरूप में हजारों नाक, कान, मुख, आंखें, बांहें और पैर थे। अ देखता है कि उस विराट स्वरूप में सारा संसार पैदा होकर फिर लीन हो रहा है। आश्चर्य तथा भव सहित यह भी देखा कि भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य आदि बड़े- तेजस्वी योद्धा उन विश्वव्यापी रूप के दांतों और होठों के बीच में लटकते हुए नजर रहे थे। कितने तो उनके होठों के बीच में पिसते हुए दिख रहे थे, आदि-आदि। इस त के और भी कई नजारे देखकर अर्जुन भयभीत हो गया और श्री कृष्ण को प्रार्थना व "हे भगवान! अब मुझमें और कुछ अधिक देखने का सामर्थ्य नहीं रहा है, अतः क करके मुझे अपना वही मनुष्य रूप दिखाइए।" भगवान भक्त की प्रार्थना सुनकर फि अपना मनुष्य रूप दिखाते हैं। भगवान फिर फरमाते हैं कि, "हे अर्जुन! मेरे जिस दुल स्वरूप को तुमने देखा वह न वेद विद्या से, न तपस्या से और न ही दान-पुण्य से दे जा सकता है। क्योंकि मुझे प्राप्त करना असंभव है। मुझे पाने का सबसे जो सुगम रास है, वह है अनन्य प्रेमाभक्ति। उसी के द्वारा मुझे देखना, मेरे स्वरूप को पहचानना अ मुझ में लीन हो जाना संभव है।" "हे अर्जुन! जो पुरुष मेरे निमित्त सब कर्म करता सदा मेरे में समाया हुआ है, मेरा ही अनन्य प्रेमी है, जो संसार के मोह माया के चक्क से परे है, वह भक्त मुझ में समा जाता है।"

इस अध्याय का असली मतलब समझाते हुए श्री कृष्ण भगवान फरमाते है, " अर्जुन! सबको पैदा करने वाला तथा मारने वाला भी वही कुल मालिक ही है। क्यों अर्जुन युद्ध करने के लिए इनकार इसलिए कर रहा था कि वह अपने सगे-संबंधियों मारने का पाप अपने सर नहीं लेना चाहते थे और उन लोगों को मारकर अधर्म का क क्यों करे? इसीलिए भगवान कृष्ण ने उनको अपना विराट स्वरूप दिखाया कि वे स योद्धा तो पहले ही मेरे द्वारा मारे जा चुके है। तुम तो केवल निमित्त मात्र उनको मारने

कर्म करो। इस प्रकार तुम पाप-पुण्य से छूट जाओगे और तेरा यह कार्य निष्काम और उपासना में शामिल हो जाएगा। क्योंकि जो पुरुष इस तरह बंधन से मुक्त रहकर अपना सब कुछ मालिक को अर्पण करके कर्म करता है, वह कर्म फल के बंधन में नहीं आता और अनन्य भक्ति द्वारा अपने मालिक इष्ट देव में मन लगाकर परम पद को प्राप्त होता है।''

यदि गहरे विचार से देखा जाए तो सारी परम पवित्र गीता का असली मतलब तो भक्त अर्जुन का मोह दूर करके उन्हें भ्रम के भुलावे से दूर करने का था। यह जीव अपने झूठे अभिमान और अहंकारी भावना से यह समझने लगता है कि, ''मैं ही सब कुछ करने वाला हूँ।'' अज्ञान के अंधेरे के कारण वह कहता है, ''मैंने यह किया, वह किया और वो भी करूँगा आदि-आदि।'' किंतु असलियत कुछ और ही है। वास्तव में जीव तो केवल निमित्त मात्र है। कर्म करने के लिए बल, बुद्धि, हिम्मत, शक्ति और समझ को देने वाला हो तो वो मालिक ही है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष अपने सारे कर्म, कुल मालिक को अर्पण करते हुए, निष्काम भावना से कर्म करता है और इस प्रकार वे पाप-पुण्य के चक्कर से मुक्त रहते हैं। वास्तव में जीव का झूठा अभिमान ही उसके बंधन का कारण बन जाता है। इसी कारण प्रभु अपने भक्तों के मन से उस दुखदाई झूठे अभिमान को जड़ से निकाल फेंकते हैं, ताकि भक्त सुखी हों।

दोहा

''यद्यपि दुख पावे निमित्त
रोवे बाल अधीर।
व्याधि नाश हित जननी
गवे ना सो शिशु पीर।
तये रघुपति निज भक्त कर
हरिहे मान हित लाग।
तुलसीदास ऐसे प्रभु हैं
किस न भजत भ्रम त्याग।''

अर्थात् जिस प्रकार किसी बालक को कोई जहरीला फोड़ा निकल आता है, तो उसकी माँ उसको उस पीड़ा से मुक्ति दिलाने के लिए किसी डॉक्टर से ऑपरेशन करवाती है, ताकि उसको उस दुख से मुक्ति मिले। परंतु उस ऑपरेशन से मिली पीड़ा के कारण वह बच्चा चिल्लाता है और अपनी माता तथा डॉक्टर को अपशब्द भी बोलता है किंतु उसकी माँ इस बात की परवाह नहीं करती, क्योंकि वह कार्य उसकी भलाई के कारण करती है। ठीक इसी प्रकार भगवान भी अपने भक्तों के झूठे मान, बढ़ाई और अभिमान को जड़ से मिटाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसा करने से जीव बालक की भाँति दुखी क्यों ना हो, किंतु वे जानते हैं कि इसी में ही जीव की भलाई है। गोसांई तुलसीदास जी फरमाते हैं कि, ''ऐ जीव! ऐसे हितकारी प्रभु, जो सदा तेरे भलाई के लिए चिंतित रहते हैं, तुम क्यों नहीं सब तरह के भ्रमों को त्यागकर, उसकी शरण में जाते।''

अध्याय - 12

इस अध्याय में जिसका नाम भक्ति योग है, इसमें अनन्य भक्ति के सुंदर सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। अध्याय के शुरू में भक्त अर्जुन सवाल करता है, ''हे भगवान! कोई पुरुष तो अनन्य भक्ति के द्वारा मालिक की प्राप्ति के साधन में लगते हैं, तो कोई अन्य ज्ञान द्वारा आत्मा का दर्शन करके, उनको प्राप्त करते हैं। परंतु इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है?'' उत्तर में श्री भगवान ने फरमाया, ''हे अर्जुन! उन दोनों में से जो अपना पूरा ध्यान सगुण साकार सुंदर रूप में लगाते है और एकाग्र चित्त से अटल श्रद्धा सहित इष्ट देव के चिंतन में लगे रहते हैं। जो पुरुष शुभ-अशुभ द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में करके निराकार का ध्यान करते हैं, मालिक की प्राप्ति उनको भी ज्ञान द्वारा हो सकती है। परंतु वह रास्ता कष्टदायक होता है और उसमें अनेक प्रकार के विघ्न आते हैं, जिससे उनका मन एकाग्र रह पाना कठिन हो जाता है। इसके विपरीत प्रेमाभक्ति का मार्ग सुगम है। जो पुरुष अपने सारे कर्मों को मालिक के अर्पण करके पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से उनका भजन करते हैं, वे आवागमन के चक्कर से निकलकर, प्रभु से एक हो जाते हैं। इसलिए हे अर्जुन! तुम भी वही रास्ता अपनाओ। अपना पूरा ध्यान इष्ट देव के स्वरूप में लगाकर रखो। अपनी समस्त भक्ति उस स्वरूप में लगाओ और केवल उनके प्राप्ति का यत्न करो। यदि यह भी संभव न हो तो अपने सारे कर्म मालिक को अर्पण करके, भजन साधन द्वारा उनकी प्राप्ति का यत्न करो और यदि यह भी संभव न हों तो सब कर्मों के फल की इच्छा त्यागकर योग का अभ्यास करो।

आगे चलकर श्री कृष्ण भगवान जी शांत चित्त वाले भक्त के लक्षण फरमाते हैं कि जो किसी से बैर-विरोध नहीं रखते जिसके हृदय में सबके लिए समान भाव से प्यार होता है, जो संसार के सुख दुख, शोक आदि द्वंद्वों से ऊपर हैं और जिसने भजन अभ्यास द्वारा अपनी श्रद्धा को परिपक्व किया है, केवल वही शांतचित्त होकर मालिक की भक्ति में विलीन रहता हे। ऐसा सच्चा भक्त, जो धीर और गंभीर है, वह प्रभु को प्रिय है।'' इसलिए हे अर्जुन! तुम अपना मन और बुद्धि सब ओर से हटाकर, मेरे में लगा दो तो मुझे ही प्राप्त करोगे।

अब आगे फिर अनन्य प्रेमी भक्त के लक्षणों का विवरण करते हैं कि, जो पुरुष ध्यान योग में लगा रहता है, जो गम, खुशी तथा मुनाफे और नुकसान में समभाव रहता है, जो अपने मन तथा इंद्रियों सहित शरीर को वश में रखकर, कुल मालिक में पूर्ण विश्वास रखता है और जो मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार को मालिक के अर्पण कर देता है, वही पुरुष प्रभु को अतिप्रिय होता है। जो किसी से भी द्वेषभाव नहीं रखता, जो अंतर तथा बाहर में साफ-पाक है, जो खुशी, गम, भय, बैर-विरोध से रहित है, जो सयाना है अर्थात् अपने असली फर्ज को जानता है, जो पक्षपात से रहित है, ऐसा सच्चा भक्त मालिक को प्यारा होता है। जो पुरुष भ्रम, आशा-निराशा के चक्कर से आजाद है, जो शुभ अथवा अशुभ जैसे सभी कर्मों के फलों को त्याग करने वाला है, वह भक्तिवान पुरुष है और मालिक उससे प्यार करता है। जिसके हृदय में सबके लिए समान रूप से प्यार है, फिर चाहे दोस्त हो या दुश्मन।

जो मान-अपमान में समान भाव से व्यवहार करता है, जो सर्दी या चाहे गर्मी, सुख या दुख जैसे द्वंद्वों से मुक्त है, जिसके लिए नेकनामी चाहे बदनामी, एक समान है, जो हर तरह से मालिक की मौज और रजा पर राजी रहता है, माया तथा ममता में निर्लेप है, ऐसा स्थिर बुद्धि वाला पुरुष मालिक को प्यारा होता है। इसलिए जो पुरुष मेरे द्वारा ऊपर कहे गए वचनों और अमृतरूपी उपदेशों को निष्काम भाव सहित श्रद्धा और विश्वास से हृदय में धारण करते हैं वे भक्त प्रभु को अतिप्रिय लगते हैं।

इस अध्याय का तात्पर्य यह है कि श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि, ''प्रभु को पाने के जो भिन्न-भिन्न रास्ते या योग है, उन सबमें प्रेमाभक्ति योग ही श्रेष्ठ है। यह अति सरल तथा सुगम भी है। जैसे और साधनों में काफी कष्ट तथा विघ्न पड़ते हैं, वैसे इस साधन में कोई मुश्किल नहीं पड़ती। अनन्य प्रेमी भक्त मालिक की सच्ची भक्ति प्राप्त होने पर, अपनी आत्मा को अपने इष्ट देव को अर्पण कर देता है और उनके ध्यान में मग्न रहता है। मालिक के प्रेम का मस्ताना होने के कारण, वह जल्दी ही परम शांति को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि जब मन में मालिक का सच्चा प्रेम पा लिया तो फिर वहां संसारी कामनाएं अपने आप भाग जाती है। यही तो अनन्य प्रेमाभक्ति का चमत्कार है कि जहां वह प्रवेश करती है, वहां सब प्रकार की इच्छाएं भाग जाती है अर्थात् अन्य किसी प्रकार की कामना नहीं रह सकती। वैसे सच्चे प्रेमी को किसी और साधना की

कोई जरूरत नहीं रहती। उनका कार्य तो केवल अनन्य प्रेम से होता है। मन के जिस मैल को साफ करने के लिए तपस्या और योग आदि साधन करने पड़ते हैं, वह मैल अनन्य प्रेम के पैदा होते ही, अपने आप साफ हो जाता है। मन शुद्ध होकर इष्ट देव के रहने का स्थान बन जाता है। इस प्रकार सच्चे प्रेमी को फिर और किसी चीज की आवश्यकता हो सकती है? उनके सारे मनोरथ अपने आप पूर्ण होते रहते हैं। इसी कारण प्रेमाभक्ति की महिमा सब संतों ने बताई है।

एक और बात जो श्री कृष्ण भगवान ने बताई, वह यह है कि किसी भी देहधारी मनुष्य के लिए निराकार निर्गुण रूप की उपासना करना कठिन है क्योंकि देहधारी के लिए निराकार का ध्यान करना कठिन है। उनमें अनेक प्रकार की कठिनाईयाँ आ सकती हैं और साथ ही चित्त का एकाग्र हो पाना अति मुश्किल हो जाता है। इसलिए हे अर्जुन! तुम उस कठिन मार्ग को छोड़कर भक्ति योग का सरल मार्ग अपनाओ। भक्ति योग के रास्ते मन को इष्ट देव के ध्यान में एकाग्र करना आसान है। इष्ट देव में सच्चा प्रेम होने से मन में किसी और वस्तु का ध्यान नहीं आ सकता। प्रेमाभक्ति की शक्ति के सामने मन और माया की सारी शक्तियां हार मानकर भाग जाती हैं। इस प्रकार जीव सरलता से उनके कष्टदायक असर से आजाद हो जाता है। दूसरे साधनों द्वारा मन और माया पर हावी होना मुश्किल है, परंतु प्रेमाभक्ति द्वारा वह कार्य बड़ी सरलता से अपने आप हो जाता है। अब जरा गहराई से विचार किया जाए तो जीव के लिए यह एक खास काम है, जो करना उनके लिए बहुत जरूरी है। वैसे भी सब साधनों को करने का मतलब भी यही होता है कि जीव इन मन और माया के विषयों से दूर होकर सुखी हो और जब ऐसा हो गया तो और कुछ करने की जरूरत नहीं होगी। पर ऐसा न हो पाए तो अनेक साधनों के करने का फायदा ही क्या? यदि मन की चंचलता दूर न हुई और चित्त से माया के संस्कार तथा मलीनता आदि का विनाश न हुआ तो सारी मेहनत बेकार। इसलिए भगवान श्री कृष्ण ने प्रेमाभक्ति को इतनी प्रधानता दी है।

आगे चलकर श्री कृष्ण भगवान अनन्य प्रेमी भक्त के लक्षण फरमाते हैं कि "उनकी किस प्रकार की आदत और तबीयत होनी चाहिए? जो पुरुष अपने चित्त को योग अभ्यास में लीन कर लेता है और उस अभ्यास की बरकत में जिसका विश्वास और निश्चय दृढ़ हो चुका है, वह अपने मन को मालिक के स्वरूप में लगाकर, उनसे

मिलकर एक हो जाता है। यही अनन्य भाव तथा पूर्ण भक्ति कहलाती है। जहाँ इस तर की स्थिति हो गई, वहाँ से राग-द्वेष, भ्रम, भौ, आशा-निराशा, काम, क्रोध, लोभ, मो तथा अहंकार आदि कैसे रह सकते हैं? उस पुरुष के लिए खुशी, गम, सुख-दुख शीत, उष्ण आदि जैसी हालतें, सब एक जैसी प्रतीत होती है। उनके लिए निंद नेकनामी, लाभ, अलाभ सब समान हो जातेहैं। उसकी नजर में शुभ-अशुभ दोनों कोई अंतर नहीं दिखता। उसके लिए दोस्त दुश्मन का भेद भी समाप्त हो जाता है। इ प्रकार ऐसा पुरुष उन सारी स्थितियों से जो संसार के बंधन में बांधने वाली है, इन स से मुक्त होकर मोह-माया से निर्लेप हो जाता है। यही वास्तव में जीवन मुक्ति और पर पद होता है। और यही भक्ति की ऊँची अवस्था है। फिर ऐसा भक्त भगवान को क न प्यारा होगा? जिस पुरुष ने ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली, उसके लिए यह कह अनुचित न होगा कि वह मालिक के रूप में मिलकर एकरूप हो गया। फिर उसमें अ मालिक में कोई भेद नहीं रहा। यह वह ऊँच पदवी है, जिसकी कद्र केवल वे लोग जानते हैं जिन्होंने इस प्रकार की अमली कमाई की होती है। ऐसे ही उत्तम भक्तों अ मालिक के प्यारों के लिए सत्पुरुषों ने अपनी वाणी में इस तरह फरमाया हैं-

''जो नर दुख में दुख नहीं माने,
सुख स्नेः और भौ नहीं जांके,
कंचन माटी मानें।।''(इक रहाऊ)

''नहीं निंदा नहीं उसतत् जांके
लोभ मोह अभिमाना।
हरख सोक ते रहे नियारो
नाहीं मान-अपमाना।।''

''आसा मनसा सगल त्यागी
जग ते रहे निरासा।

काम क्रोध जिह परसे नाहीं
तेह घट ब्रह्म निवासा।।''

''गुरू कृपा जिह नर को कीन्हीं
तेही इह जगत पठानी।
नानक लीन भयो गोबिंद स्यों
ज्यों पानी संग पानी।''

यही सच्चे भक्त की पूर्ण अवस्था है और इस अवस्था के पाने के लिए ही महापुरुषों का आदेश होता है। वैसे सारे साधन करने का मतलब भी यही होता है। इस प्रकार निर्भय और निर्भ्रम की अवस्था प्राप्त होती है परंतु जिस प्रकार की हालत का ऊपर बयान किया गया है, वह हालत तो पूर्ण गुरू की कृपा से ही संभव हो सकती है, अन्यथा उसको प्राप्त करना मुश्किल है।

अध्याय - 13

अब आगे चलकर इस तेरहवें अध्याय में जिसका नाम प्रकृति पुरुष विवेक योग है, पदार्थ और प्रकृति के बीच में जो भेद है, उसके बारे में सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। आत्मा, पदार्थ और प्रकृति बाबत अर्जुन के सवाल करने पर श्री कृष्ण भगवान उनको प्रकृति और पुरुष के बीच जो भेद है, उसे स्पष्ट करते हैं। वे फरमाते हैं कि ''इस शरीर को खेत्र और शरीर के ज्ञान को जानने वाले को खेत्रज्ञ अर्थात् जानने वाला कहा जाता है। प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि है। सब गुण और परिवर्तन प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। प्रकृति ही कारण और कार्य भी है। और पुरुष जो है, वह प्रकृति द्वारा पैदा किए इन गुणों तथा परिवर्तन आदि से दुख-सुख को भोगने वाला है। इस तरह अपने भोगने वाले गुण के कारण, वह भी प्रकृति के अंदर ही आ जाता है। इस देह के अंदर ही परम पुरुष परमात्मा का निवास होता है। वे ही सबके साक्षी और जानने वाले भी है। वे ही भोक्ता, भरता और कर्ता भी है। उस परम पुरुष को कई लोग सांख्य योग द्वारा और कई अन्य कर्म योग द्वारा देखते है। इस धरा पर सब अस्थावर और जंगम अर्थात् जो भी रचना देखने को मिलती है, वह सब प्रकृति और पुरुष के मिलाप से उत्पन्न होती है। जो पुरुष इन सब वस्तुओं में उस परम पुरुष को देखता है और जानता है, वही ज्ञानी होता है। शरीर और मन की दशाओं में जो परिवर्तन होता है, वह भी प्रकृति द्वारा ही होता है। जो पुरुष इस बात को जानता है, वह ज्ञानी है।

''शरीर में रहने वाला परम पुरुष या परमात्मा इन हालतों से निर्लेप है। जैसे सूरज सारे ब्रह्मांड को प्रकाशमान करता है, वैसे ही आत्मा के तेज से सारा शरीर भरा रहता है। जो महात्मा-जन आत्म-ज्ञान द्वारा प्रकृति, पुरुष और पदार्थ के तत्व को अच्छी तरह समझ लेता है और गुण, माया और प्रकृति से जीव को मुक्त कराने के साधन में लग जाते है, वे परम पुरुष के चरणकमलों में स्थान पा लेते हैं।''

तत्पश्चात् शरीर की पहचान बाबत बतलाते हैं कि, ''यह कर्म करने का औजार है और उनके कर्मों का दृष्टा या ज्ञान रखने वाला जो है, वह आत्मा या रूह है। यह भी

जान लो कि सब शरीरों के अंदर कुल मालिक आत्मा बनकर विराजमान है और इसी प्रकार आत्मा और शरीर की पहचान करना ही सच्चे ज्ञान की पहचान है।'' फिर शरीर के संबंध में फरमाते हैं कि, ''ख्वाहिश, राग, द्वेष, सुख, दुख, चेतना या गाफिल होना तथा स्थूल शरीर का अभिमान आदि यह संक्षेप में इस शरीर की विशेषताएं है।''

अब सच्चे ज्ञानी के लक्षणों का विवरण करते हुए फरमाते हैं कि, ''अपनी बढ़ाई का ना होना, छल-कपट का न होना, प्राणी मात्र को न सताना, क्षमाभाव, मन तथा वाणी से सरल स्वभाव रखना, श्रद्धा भक्ति सहित गुरू की सेवा, बाहर तथा अंदर की सफाई, अंतःकरण की स्थिरता, मन शरीर और इंद्रियों को वश में रखना, लोक-परलोक के संपूर्ण भोगों में लगाव न रखना, अभिमान का न होना, जन्म-मरण, बुढापो और रोग आदि में दोष और दुख का विचार करना, स्त्री-पुत्र, कुटुंब, परिवार, रिश्तेदारों में तथा धन-दौलत आदि में मोह न रखना, अपनी प्रिय वस्तुओं के मिलने या बिछुड़ने पर खुशी या गम न होना, समान भाव से रहना अर्थात मन के मुताबिक या उलट दोनों दिशाओं में हर्ष या शोक आदि विकारों से खाली रहकर ध्यान योग को अपनाकर मालिक की अनन्य भक्ति का एकांत में सेवन करना और विषय आसक्त मनुष्य के संग में प्रेम न रखना, आध्यात्मिक ज्ञान में अपने को स्थिर करना और सच्चे मालिक को अपने अंतर में विराजमान देखना, ये सारे लक्षण सच्चे ज्ञानी के हैं। उसके जो विपरीत है, वह सब अज्ञान ही समझना चाहिए।''

रात्रि क्या है या दिन क्या है? इसके उत्तर में केवल इतना कहा जा सकता है कि रोशनी के होने का नाम दिन है और प्रकाश के न होने का नाम रात्रि है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि अंधेरे के न होने को राशनी और रोशनी के न होने को अंधेरा कहते हैं। ठीक उसी प्रकार ज्ञान क्या है? अज्ञान न होने का नाम ज्ञान है। अज्ञान के क्या लक्षण है? महापुरुषों ने शारीरिक ज्ञान को ही अज्ञान कहा है और आध्यात्मिक बुद्धि को ज्ञान की संज्ञा दी है। जब तक मनुष्य की बुद्धि शारीरिक ज्ञान में गुम रहती है, वह शरीर के दुख-सुख को वास्तविक दुख-सुख मानता है। शरीर की मान-बढ़ाई को ही वास्तविक मान, बढ़ाई तथा इज्जत मानने लगता है और शरीर के नातों को ही सच्चा रिश्ता नाता समझता है। शरीर की जायदाद, धन-दौलत को ही सब कुछ समझने लगता है और शरीर के मोह, ममत्व, ऐश-आराम की ख्वाहिशों में वह गिर जाता है। इस

प्रकार वह पूरी तरह से शरीर के अधीन होकर अपनी आत्मा या रूह को भुला लेता है। जैसे कि आत्मा या रूह कोई वस्तु नहीं होती। वह उनको भूल जाना मानो अपना फर्ज समझता है और केवल उनके संबंधित कर्मों को करना अपना कर्तव्य समझता है। यदि इस पर विचार किया जाए तो इस आत्मा का रहस्य ही क्या हुआ?

ऐसी अवस्था को सत्पुरुष अज्ञान की संज्ञा देते हैं। यदि शरीर के संबंध को ही मनुष्य सब कुछ समझता रहे, तो फिर जीवन का अर्थ ही क्या रहा? शरीर के लिए सब कुछ हुआ पर आत्मा के लिए क्या बना? यदी शरीर सुखी रहा तो क्या हुआ? आत्मा तो वैसे ही जन्म-मरण के चक्कर में भटकती रहे। फिर ऐसे जीवन का लाभ ही क्या हुआ? यदि किसी पुरुष ने शरीर के सारे सुख प्राप्त कर लिए, तो भी देखा जाए तो इस वर्तमान जीवन में उनका साथ निभाना कठिन है परंतु यदि वह साथ दे भी तो भी यह शरीर के नाश होते ही, ये सारे संबंध, धन, दौलत, कुटुंब परिवार, मान-बढ़ाई आदि किस काम के? यही सोचने वाली बात है। सत्पुरुषों ने फरमाया है :-

"अर्ब खर्ब लें लक्ष्मी
उदय अस्त लें राज।
तुलसी जो निज मरन है
तो आवे कौने काज?"

अर्थात् संत तुलसीदास जी का विचार है कि यदि किसी मनुष्य को अरब खरब रुपयों की दौलत मिल जाए और चाहे उदय से अस्त तक या जहाँ से सूरज निकलता है वहाँ से लेकर, जहाँ अस्त होता है, वहाँ तक का राज्य भी मिल जाए तब भी अंत में तो मनुष्य को काल का निवाला ही बनना पड़ता है, तो फिर इतनी सारी दौलत, उसके किस काम की और इतने बढ़े राज्य का वह क्या करेगा?

आम तौर पर मनुष्यों की नजर संसारी पदार्थों तथा सुख वैभव पर ही रहती है, परंतु संतों की निगाह में यह सही नहीं है। वास्तविक सुख संसार के सुख नहीं अपितु असली वस्तु तो होती है आत्मा या रूह, जिसकी ओर ध्यान देना जरूरी है। जन्म-जन्मांतरों से यह आत्मा इसी कारण दुखी रहती है। वास्तव में इन मायावी पदार्थों और शारीरिक सुख भोगों से उनका कोई संबंध नहीं रहता। उनका संबंध तो केवल कुल मालिक से

होता है। उस परम पुरुष से मिलकर ही वह सुखी तथा आनंद रूप बन सकती है। इसीलिए श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि, ''सच्चा ज्ञानी वह है जो मनुष्य शरीर तथा उसके संबंधों, माया-ममता और विषय-विकार से खाली है। जो एकांत में बैठकर मालिक के ध्यान में मन लगाकर, अंतर में आनंद का अनुभव करता है और श्रद्धा भक्ति सहित सच्चे गुरू की सेवा में एक मन होकर अपने आपा भाव को मिटा देता है। वैसे केवल सुनने या पढ़ने से काम नहीं बनता, जब तक सत्पुरुषों के सच्चे उपदेश को मन में धारण करके कार्य में न लगाया जाए। बिना कार्य में लाने के कभी काम नहीं बनता। जैसे भूख को मिटाने के लिए केवल वस्तुओं के नाम लेने से पेट नहीं भरता, जब तक उन चीजों को सेवन न किया जाए। ठीक उसी प्रकार असली कमाई का रास्ता भी वैसे ही होता है। जब तक अमल नहीं किया जाता, सब कुछ जानकर भी बेकार है। परंतु थोड़ा बहुत जानकर यदि उस पर अमल किया जाए तो पूरा-पूरा फायदा होता है।

संतों तथा महापुरुषों के उपदेश का यह कतई मतलब नहीं होता कि संसार या उसके सामानों को हम न बरतें। बल्कि उनका असली मतलब तो हमें उनके मोह ममता को मिटाने से होता है। यह जीव जो सांसारिक पदार्थों में मोह ममता तथा दिल का लगाव रखकर बैठा है, यह उसकी गलती है। जिन वस्तुओं से इस जीव का लगाव नहीं होना चाहिए, उसे दिल से लगाना उनके लिए दुखदाई साबित होगा। प्रभो के प्यारे इसलिए इन संसारी पदार्थों को भोग करते हुए भी अपनी सुरिति को उसमें नहीं फंसाते। वे जानते हैं कि सुरिति का असली संबंध तो केवल मालिक से होना चाहिए। इसलिए वे अपनी सुरिति को वहाँ नहीं लगाते।

''जो वर्तण चाहो जग में
तो रखो ना उनसे प्यार।
रखना चित चरणों में
यह संतों की पुकार।
'कान' रहना होश्यार
नहीं तो पछताना पड़ेगा।''

श्री रामायण का प्रसंग है कि जब श्रीराम ने वानरों की फौज सहित लंका पर

चढ़ाई की तो श्री भगवान की सेना ने लंका के बाहर अपना डेरा लगाया था। उस समय लंकापति रावण का छोटा भाई विभीषण जो भगवान का भक्त था, उन्होंने अपने भाई रावण को समझाना चाहा कि श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं अपितु वे तो साक्षात मालिक के अवतार है इसलिए उनसे युद्ध करना कल्याणकारी नहीं! किंतु रावण को उस पर क्रोध आया कि तुम मेरे छोटे भाई होकर मुझे उपदेश दे रहे हो और मेरे दुश्मन का पक्ष ले रहे हो। तब गुस्से में आकर रावण ने विभीषण को लात मार दी। विभीषण ने वहाँ से आकर श्रीराम की शरण पकड़ी। इस समय श्रीराम ने निम्न प्रकार वचन फरमाया :-

''जननी जनक-बंधु सुतदारा
तन धन भवन-सौहृद परिवारा।
सबकी ममता-धाग बटोरे
मम पद महिं-बांध वट डोरे।।
सम दृष्टि-इच्छा कछु नाहिं
हर्ष शोक-भौ नहीं मन माहिं।
आस सज्जन मम-डर बसे कैसे?
लोभी हृदे-बसे धन जैसे।।''

अर्थात् माता, पिता, भाई, स्त्री तथा अपने शरीर, धन, धाम, घर-बार, संबंधी, मित्र और परिवार आदि इन सब में जीव जितनी ममता रखता है, उन सभी ममता रूपी छोटे-छोटे धागों को इकट्ठा करके एक मजबूत रस्सी बँटकर मेरे चरणों में बाँध दें और दुख-सुख आदि द्वंद्वों जैसी हालतों में एक चित्त रहकर साथ-साथ अपने मन में मालिक की प्रेमा भक्ति के सिवा और कोई इच्छा न रखें। जिसके मन में दुख-सुख, भ्रम, भै आदि विकार नहीं रहते ऐसा विचारवान पुरुष मेरे मन में इस तरह निवास करता है, जैसे किसी लोभी के मन में हर समय धन समाया रहता है।

इसी प्रकार मालिक की प्रसन्नता उस जीव पर सदा रहती है, जो अपने मन को संसार में फँसने नहीं देता। बल्कि संसार का हर कार्य करते हुए भी मालिक की

प्रेमाभक्ति को अपने हृदय में बसाके रखता है। उसको वास्तव में सच्चा ज्ञान कहा जाना चाहिए। क्योंकि भक्ति के अंदर सब अपने आप आ जाते हैं।

''धन्न वह पुरुष है पवित्र और धनवान,
सच्चा विद्वान कहलाता तपी यती गुणवान
'कान' उत्तम ज्ञानी जान जिसके हृदे भक्ति।''

अर्थात् इस संसार में वही पुरुष धन्य है, पवित्र है, विद्वान है तथा वही योग्य, तप करने वाला है, गुणवानों में श्रेष्ठ और सच्चा ज्ञानी तथा सत्वादी भी होता है, जिसके हृदय में परम पुरुष की भीक्ति विराजमान है।

इसलिए कहा जाता है कि प्रेमाभक्ति का हृदय में होना ही सच्चा ज्ञान है। इसके अतिरिक्त बाकी सब अज्ञान है। तत्पश्चातृ श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि उस सच्चे मालिक को कितने ही लोग शुद्ध बुद्धि द्वारा ध्यान के माध्यम से अपने हृदय में देखते हैं और कुछ और निष्काम कर्म योग द्वारा उनका दर्शन करते हैं। इस प्रकार जो पुरुष शुद्ध भाव से मालिक में श्रद्धा रखते हैं या जो उनके याद में मग्न रहते हैं, उनकी शुद्ध भावनाओं का फल उनको मालिक की प्राप्ति होती है और वे यकीनन इस भवसागर से पार हो जाते हैं।

इस तेरहवें अध्याय का तत्व यह है कि शरीर में आसक्ति रहने वाली बुद्धि अज्ञानता के कारण दबी रहती है और आत्मा को परखने तथा समझने वाली बुद्धि ज्ञान से प्रकाशमान रहती है। क्योंकि शरीर कोई और वस्तु है और आत्मा कुछ और। शरीर एक जड़ तत्व है जो अंत में नाश हो जाता है और अस्थिर है। अनेक प्रकार की ख्वाहिशें, राग-द्वेष, सुख-दुख, खुशी-गम, चिंता-कष्ट, क्लेश आदि ये सब शरीर के कारण पैदा होते हैं या ऐसा कहना चाहिए कि ये सब शरीर के लगाव का नतीजा है। आत्मा को जानने वाला इससे लगाव रखने वाला मालिक को प्यारा होता हैं और वह संसार सागर से पार होकर परम पद को पा लेता है। आत्मा को पहचानना और मालिक की भक्ति में मग्न रहना ही सच्चा ज्ञान होता है। इसके विपरीत सब अज्ञान कहलाने योग्य है।

अध्याय - 14

इस चौदहवें अध्याय में जिसका नाम त्रय विभाग योग है, इसमें माया के तीन गुणों के विशेषताओं का वर्णन किया गया है। श्री भगवान ने बताया कि, ''जो भक्त सच्चे ज्ञान के तत्व को जानकर कुल मालिक के साये में आ जाता है, वह भक्ति मार्ग में सबसे ऊँचा स्थान पा लेते हैं। भौतिक प्रकृति ही सब भूत प्राणियों की यूनि है। उस यूनि में मालिक ही चेतन रूप बीज की स्थापना करता है। इसी प्रकार जड़ और चेतन के संयोग से अस्थावर और जंगम सृष्टि की उत्पत्ति होती है। माया की प्रकृति के तीन गुण सत, रज तथा तम है। ये तीनों गुण जीव आत्मा पर अपना-अपना प्रभाव डालते हैं परंतु सच्चे ज्ञान के प्राप्त होने पर इन तीनों गुणों के प्रभाव से छुटकारा मिल जाता है सुख-दुख, यश-अपयश आदि उनके लिए एक समान हो जाते हैं। वह प्रकृति के सभी वस्तुओं में समभाव रखता है। अविनाशी ब्रह्म, नित्य धर्म, अखंड तथा एकरस का आ ार भी केवल कुल मालिक ही होता है। जो प्राणी उनकी शरण में एकभाव से स्थिर रहता है, वह परम पद को पाता है।''

श्री भगवान ने शुरू में फरमाया था, ''हे अर्जुन! अब मैं तुझे उन सब ज्ञानों से अति उत्तम ज्ञान बतलाता हूँ, जिसको जानकर सारे मुनिजन इस संसार सागर से मुक्त होकर परम गति को पा गए है। इस परम ज्ञान को धारण करने वाले लोग सृष्टि के आदि में पैदा नहीं होते और न ही अंतकाल में व्याकुल होते है क्योंकि उनकी दृष्टि में मालिक के सिवा और कुछ भी नहीं है।''

आगे भगवान फरमाते हैं कि, ''प्रकृति ही सब की आदि योनी है, जिसमें कुल मालिक जब बीज स्थापित करता है, तब सृष्टि में उत्पत्ति होती है। इस प्रकार प्रकृति ही सबकी माता और मालिक ही सबका पिता होता है।''

अब प्रकृति के गुण बतलाते हैं -

"सतो रजो तथा तमो तीनों गुण अर्जुन।
निश्चय होते हैं प्रकृति से उत्पन्न।।
देही में ये बांधते 'कान'।
सब ही जीव अमर को।"

(14-5)

"निर्मल प्रकाशिक रोग रहित,
तथा सुख समृद्धि की खान।
सतो गुण 'कान' बाँधता,
ज्ञान आसक्ति से पुरुष को।।"

(14-6)

"मोह रजो का रूप निश्चे है अर्जुन!
तृष्णा और आसक्ति को उनसे उपजा ज्ञान।
करमों और फल की आसक्ति से,
'कान' बांधता सब जीवों को।।"

(14-7)

"अज्ञान से उत्पन तमो गुण को जान,
प्रमाद से ये सबको बांधता अर्जुन।
निंदा आलस्य अल्प बुद्धि से
'कान' बांधता सब जीवों को।।"

(14-8)

सतो गुण लगाता सुख में,
रजो कर्म में बांधता पार्थ!
तमो ढाकता 'कान' ज्ञान को,

यह निश्चय मेरा मान।।''

(14-9)

''सतो होता प्रबल जब रजो तमो दबता,
सतो तमो दबने से प्रकट रजो होता।
तमो तब बढ़ता है 'कान'
जब सतो रजो दब जाते।।''

(14-10)

अर्थात् हे अर्जुन! प्रकृति से उत्पन्न हुए ये तीन गुण सतो, रजो और तमो इस अवनाशी आत्मा को शरीर में बाँधते हैं। हे निष्पाप अर्जुन! इन तीनों गुणों में सत गुण निर्मल होने के कारण जीव को सुख तथा ज्ञान की आसक्ति में बाँधता है। रजो गुण राग रूप है, इसलिए वह शरीर को तृष्णा और कर्म के आसक्ति में बाँधता है। हे अर्जुन! देह अभिमान द्वारा मोह में डालने वाले तमो गुण को तुम अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। यह जीव को प्रमाद, आलस्य तथा नींद के माध्यम से बंधन में डालता है। हे अर्जुन! सतो गुण सुख में लगाता है, रजो गुण कर्म में लगाता है और ज्ञान को ढाकने वाला तमो गुण निंद्रा तथा आलस्य में डालने वाला होता है। रजो तमो को दबाने से सतो गुण प्रबल होता है। सतो-तमो को दबाने से तमोगुण बढ़ जाता है।

एक-एक गुण जब शरीर में बढ़ता है तो उनका जीव पर क्या असर पड़ता है और उसकी क्या पहचान होती है अब उसका विवरण दिया जा रहा है-

''जब देह और इंदियों में
होती बोध शक्ति की उत्पत्ति।
सच मानो तुम 'कान'
होती सतो गुण की बढ़ोती।।''

(14-11)

''जब होती वृद्धि रजो की अर्जुन!

उपजते हवस लोभ प्रवृत्ति।
ये पैदा करते 'कान'
कर्मों के आरंभ को।।''
(14-12)

''तमो गुण की वृद्धि से 'कान'
होते उत्पन्न मोह और अप्रवृत्ति।
कुरूनंदन! साथ पैदा होती
निंदा आदि वृत्तियाँ।।''
(14-13)

अर्थात् जब इस शरीर और इंद्रियों में चेतना और ज्ञान पैदा होता है, तो उस समय सत गुण की वृद्धि समझनी चाहिए। रजो गुण के बढ़ने से लोभ, प्रवृत्ति, कर्म करने में आसक्ति, मन की चंचलता तथा विषयों की इच्छा पैदा होती है। हे कुरुनंदन! तमो गुण के बढ़ने पर अंधकार, कर्तव्य कर्म में अप्रवृति आलस्य तथा मोह पैदा होता है। जब सत्व गुण के बढ़ने पर इस शरीर की मृत्यु होती है तब उत्तम कर्म करने वाले मनुष्यों को उत्तम लोक की प्राप्ति होती है। जब रजो गुण की वृद्धि होती है, तब जीव की मृत्यु होने पर संसार के कर्म भूमि में जन्म मिलता है। उसी प्रकार तमो गुण के प्रभाव में मृत्यु होने पर मूढ़ योनियों में जन्म मिलता है। सात्विक कर्म का फल निर्मल और सात्विक है। राजस का फल दुख है और तामस का फल अज्ञानता है। सत गुण से ज्ञान पैदा होता है। रजो गुणों से लोभ तथा तमो गुण से मोह तथा अज्ञान पैदा होता है।

आगे चलकर भक्त अर्जुन ने पूछा, ''हे प्रभु! इन तीनों गुणों से उत्पत्ति पुरुष के क्या लक्षण होते हैं? और वे किस उपाय से इन तीनों गुणों से अतीत रह सकता है?

उत्तर में श्री भगवान बोले, ''हे अर्जुन! जो पुरुष सत्व गुण के कार्यरूप प्रकाश को, रजो गुण के कार्य रूप प्रवृत्ति को तथा तमो गुण के कार्यरूप मोह को न तो उनके प्रवृत्ति होने पर बुरा मानता है और न ही उनके निवृत्ति होने की चाह रखता हैं, जो साक्षी बनकर उन गुणों से चलायमान नहीं होता और ऐसा मानता है और न ही उनके निवृत्ति

होने की चाह रखता है, जो साक्षी बनकर उन गुणों से चलायमान नहीं होता और ऐस मानता है कि सारे गुण अपने-अपने कार्य कर रहे है। इस प्रकार जो मालिक के सचिदानंद स्वरूप में एकी भाव से स्थिर होकर सुख-दुख को समान मानता है औ सब पदार्थों में सम दृष्टि रखने वाला है जो निंदा, स्तुति में सम रहता है तथा सफलत चाहे असफलता में भी समभाव रखने वाला है जो मान-अपमान में भी समान है औ मित्र चाहे शत्रु के लिए भी जिसकी दृष्टि एक जैसी रहती है, ऐसा पुरुष सब कर्मों के आरंभ में कर्तापन के अभिमान से रहित, गुणातीत कहलाता है। जो पुरुष अनन्य भक्ति रूप योग के द्वारा हर समय मालिक का भजन करता है, वह इन तीनों गुणों के चक्क से मुक्त होकर मालिक के सचिदानंद स्वरूप में एकरूप होने योग्य है।'' हे अर्जुन! यह समझ लो कि केवल मालिक की जाति ही अमृतमय निजधाम, अखंड और एकरस होता है।

इस अध्याय का सारांश प्रश्न उत्तर के रूप में इस तरह दिया जा सकता है।

प्रश्न 1 : सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है?

उत्तर : माया की भौतिक प्रकृति ही सब जीवों की योनि या माता है। इसमें कुल मालिक ही चेतन रूपी बीज की स्थापना करता है। इसी तरह इस सृष्टि की उत्पत्ति होती है। प्रकृति ही माता और कुल मालिक पिता होता है।

प्रश्न 2 : इस प्रकृति के क्या गुण है?

उत्तर : प्रकृति के तीन गुण है- सत्व, रजो और तम। इस प्रकार यह प्रकृति त्रिगुणात्मक कहलाती है।

प्रश्न 3 : त्रिगुणात्मक माया की क्या विशेषाताएँ है?

उत्तर : (1) सतो गुण - यह प्रकाशवान है और ज्ञान, सुख तथा शांति को उत्पन्न करता है।

(2) रजो गुण - यह लालसा, कामना तथा आसक्ति को पैदा करता है व्याकुलता, अधीरता और चंचलता आदि इनके फल होते है।

(3) तमो गुण - यह नींद, आलस्य और अज्ञान को पैदा करने वाला है

विषय विकार, अभिमान, कर्महीनता, मोह और भ्रम आदि इसके फल है।

प्रश्न 4 : सात्विक, राजस और तामसिक जीवों के मरने पर उनकी क्या गति होती है।

उत्तर : सतो गुण की प्रधानता वाले पुरुष उत्तम साधु जन और भक्त प्राणी उत्तम लोकों को प्राप्त होते हैं। रजो गुण की प्रधानता वाले मनुष्य लोभी और आसक्ति होने के कारण कर्म भूमि या संसार में जन्म लेते है। तमो गुण की अधिकता वाले, मरने के पश्चात् मूढ़ योनियों में फिरते रहते हैं। क्योंकि सतो गुण से ज्ञान, रजो से लोभ तथा तमो से प्रमाद और मोह उत्पन्न होता है।

प्रश्न 5 : त्रिगुणी माया में बँधे जीव और गुणातीत अध्यात्मक पुरुष को क्या-क्या प्राप्त होता है?

उत्तर : माया में बंधे जीव को विषय आसक्ति तथा संसार का मोह मिलता है और गुणातीत पुरुष कुल मालिक के दिव्य धाम को प्राप्त होता है।

प्रश्न 6 : त्रिगुनी माया से किस तरह बचा जा सकता है?

उत्तर : सदा मालिक का भजन करना, अटल श्रद्धा, भक्तिपूर्वक, मालिक में अनन्य भाव रखना, आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना। इन उपायों से जीव त्रिगुनी माया से मुक्त होकर मालिक के सचिदानंद स्वरूप को पा जाता है।

प्रश्न 7 : माया मुक्त पुरुष के क्या लक्षण हैं?

उत्तर : प्रकृति के तीनों गुणों और माया से अतीत पुरुष के लक्षण जो श्री कृष्ण भगवान ने बताए हैं, उनका कुछ वर्णन तो ऊपर दिया जा चुका है और सत्पुरुषों ने अपनी वाणी में जो गुणातीत पुरुष के लक्षण बताए हैं, वे इस प्रकार है –

"दोहा"

"सुख दुख जिह परसै नहीं-लोभ मोह अभिमान।
कहु नानक सुन रे मना सो मूरत भगवान।।"

उसतत् निंदिया नांहि जिह कंचन लोह समान।
कहु नानक सुन रे मना मुक्त ताहि तै जान।।''
''हर्ष शोक जांके नहीं वैरी मीत समान।
कहु नानक सुन रे मना मुक्त ताहि तै जान।।''
''भय काहू को देत नहिं-नहिं भय मानत आन।
कहु नानक सुन रे मना ज्ञानी ताहि बखान।।''
''जिहि बिखिआ सगली तजी लीओ भेख बैराग।
कहु नानक सुनु रे मना तिह नर माथै भाग।।''
''जिहि माया ममता तजी सभते भयो उदास।
कहु नानक सुनु रे मना तिह घटि ब्रह्म निवास।।''
''जिहि प्राणी हउमें तजी करता राम पछान।
कहु नानक वह मुक्त नर इह मन साची मानु।।''
''भय नासन दुरमति हरन कलि मंहि हरि को नाम।
निस दिन जो नानक भजै सफल होइ तिह काम।।''
''जिहवा गुन गोबिंद भजहु करन सुनहु हरि नाम।
कह नानक सुनु रे मना परैन जम को धाम।।''
''जो प्राणी ममता तजै लोभ मोह अहंकार।
कह नानक आपन तरै औरन् लेत उधार।।''

(गुरु वाणी राग बसंत श्लोक महला 9

अध्याय - 15

इस पंद्रहवें अध्याय को पुरुषोत्तम योग नाम दिया गया है। इस अध्याय में मालिक की प्राप्ति के लिए सिद्धांतों का वर्णन है। श्री कृष्ण भगवान ने इस संसार की तुलना एक पीपल के पेड़ से कर रहे हैं, जिसकी जड़ें ऊपर तथा मूल नीचे रहता है। इस संसार रूपी वृक्ष को वैराग्य के शस्त्र से काटकर उस धाम की तलाश करनी चाहिए, जहाँ पहुँचकर जीव लौटकर इस संसार में नहीं आता। इसलिए दृढ़ वैराग्य तथा भक्ति के माध्यम से ही परम पुरुष की शरण लेने में ही फायदा है। क्योंकि इस संसार के दुख सुख द्वंद्वों से मुक्त ज्ञानी पुरुष ही अविनाशी परम पद को प्राप्त कर सकता है। श्री भगवान फरमाते हैं कि, ''यह जीव आत्मा शरीर को छोड़ने से पूर्व ही पांच इंद्रियों तथा मन सहित इस शरीर से अलग हो जाता है और दूसरे शरीर को पाते ही फिर उनको पा लेता है। जीव आत्मा मालिक का अंश है और स्वयं अनंत है। मालिक सबके हृदय में निवास करता है। वह ही सबके अंदर काम कर रहे हैं। पुरुष दो प्रकार के होते हैं। एक तो वो जो प्रकृति के परिवर्तन में आ जाता है और दूसरा वह जो परिवर्तन से रहित कहा जाता है। पुरुषोत्तम या कुल मालिक की जाति इससे उत्तम है। जिसके हृदय में उनकी सच्ची भक्ति आ जाती है, उनको शीघ्र ही पुरुषोत्तम का ज्ञान हो जाता है।''

आगे चलकर फिर श्री कृष्ण भगवान फरमाते हैं कि, ''आदि पुरुष परमेश्वर रूप जड़ वाला तथा ब्रह्मा रूप शाखाओं वाले जिस संसार रूपी पीपल के पेड़ को अविनाशी कहा जाता है और जिसके वेद पत्ते कहे जाते हैं, उस संसार रूपी वृक्ष को जो पुरुष मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेदों के सार को जानने वाला है। इस संसार रूपी वृक्ष के तीनों गुणों रूपी कोपलों वाले, देवता, मनुष्य आदि योनियों की शाखाएं नीचे और ऊपर हर तरफ फैली होती हैं। इस वृक्ष का जैसा रूप कहा गया है, ऐसा रूप विचार काल में नहीं पाया जाता। क्योंकि इसका न कोई आदि होता है और न कोई अंत और न ही यह अच्छी तरह स्थित है। इसलिए इस अहंगता तथा ममता और वासनारूपी दृढ़ मूल वाले संसार रूपी पीपल के पेड़ को वैराग्य रूपी शस्त्र से काटकर, उस परम पद रूपी परमेश्वर को ढूँढना चाहिए, जिसको पाने वाले पुरुष फिर लौटकर इस संसार

में नहीं आते और जिस कुल मालिक के द्वारा इस पुरातन संसार रूपी वृक्ष की प्रवृत्ति
विस्तार को प्राप्त किया है, उसकी शरण अवश्य लेनी चाहिए। जिसका मोह और म
नाश हो गया है, जिसने आसक्ति रूपी दोष को जीत लिया है, जिसकी स्थिति निर
मालिक के स्वरूप में है तथा जिनकी कामना और वासना अच्छी तरह नाश हो चुकी
वे लोग सुख-दुख आदि द्वंद्वों से मुक्त होकर अविनाशी परम पद को प्राप्त करते
योगी पुरुष अपने हृदय में स्थित आत्मा को यत्न करते यथार्थ रूप से जान लेते हैं। प
जिसने अपने अंत:करण को साफ नहीं किया है, वह प्रयत्न करते हुए भी उनको न
समझ पाते है।'' हे पापों से रहित अर्जुन! यह जो अत्यंत रहस्यमय और गुप्त भेद जो
द्वारा बताया गया है, उसे तत्व से समझकर जीव ज्ञानवान तथा कृतार्थ रूप हो जाता

अध्याय - 16

यह सोलहवां अध्याय देव आसुर संपदा विभाग योग के नाम से प्रसिद्ध है। इस अध्याय में श्री कृष्ण महाराज भक्त अर्जुन को देवताओं और दैत्यों के लक्षण बतलाते हैं। देवी लक्षण मुक्ति के सहायक हैं तथा आसुरी लक्षण आत्मा को मायाजाल में फँसाते हैं। इन दोनों लक्षणों के अनुसार सृष्टि में दो प्रकार के जीव होते हैं। एक देवता और दूसरे असुर। देवताओं के लक्षण अहिंसा, सत्य, तेज और क्षमा आदि हैं तथा आसुरी स्वभाव वाले उनके मुकाबले में बेपरवाह, आलसी और व्यभिचारी होते हैं। देवी स्वभाव वाले इंद्रियों के भोगों आदि से दूर रहते हैं। परंतु आसुरी स्वभाव वाले उनमें अधिकतर लिप्त रहते हैं। वे न तो अंतर में खुश रहते हैं, न बाहर से। इस प्रकार वे गलत विचार रखने वाले जालिम तथा नास्तिक लोग जगत का नाश करते हैं। वे ना केवल अपना किंतु औरों को भी नुकसान पहुँचाते हैं। इंद्रियों में लिप्त रहने के कारण उनका चित्त सदा भ्रम तथा मोह के जाल में फँसा रहता है। उनके ऐसे कर्मों के प्रणाम स्वरूप उन्हें नर्क गति प्राप्त होती है। अहं, मान और बढ़ाई के मद में मस्त होकर वे अपने को सबसे ऊँचे मानने वाले लोक, नाममात्र तथा दिखावे के लिए थोड़ा बहुत सब कर्मों का तथा सदाचार का ढोंग करते है, परंतु उसका कोई फल नहीं निकलता क्योंकि वह शास्त्र नीति के विरुद्ध है।

आगे श्री कृष्ण भगवान फरमाते है कि, ''नर्क के तीन दरवाजे हैं, काम, क्रोध तथा लोभ। जिसको परम गति पाने की इच्छा हो उन्हें इन तीनों अवगुणों से दूर रहना चाहिए। इसलिए उनको इन उलटे रास्तों को त्यागकर शास्त्र नीति के अनुसार शुभ कर्मों को करते हुए, अपने मन को मालिक की भक्ति में लगाना चाहिए। जो लोग नीति और मर्यादा की परवाह न करके, मन की मति के अनुसार उल्टी तथा गलत कार्यवाही में लगे रहते हैं, वे न तो किसी सिद्धि को न परम गति को और न ही सुख शांति को प्राप्त कर सकते हैं।

देवताओं तथा असुरों के स्वभाव वाले पुरुषों के लक्षण इस प्रकार बतलाते है-

''प्रेम, स्मरण, ध्यान, अभय, अंत:करण की पवित्रता, तप, संयम, दान, स्वाध्याय पूजा, यज्ञ, सरलता, धीरज, सत्य, सबकी भलाई चाहना, मालिक की मौज को मानना अभिमान का त्याग, दया भाव रखना, संतोष, शांति, ज्ञान, लज्जा, गंभीरता वालों का स्वभाव, अपनी बढ़ाई न करना, मर्यादा, क्षमा और नम्रता आदि ये सब दैवी संपदा के लक्षण हैं।''

मनुष्य की मौजूदा हालत उनके पिछले जन्मों में किए हुए कर्मों का फल है पिछले जन्मों में किए हुए शुभ कर्मो को करने वाले पुरुष दैवी संपदा को प्राप्त होते हैं और ऐसे पुरुष शुभ मुर्हूत में जन्म लेते हैं। वे शास्त्र मर्यादा और नीति के अनुसार व्यवहार करते हैं। उनके शुभ कर्म और जीवन नूरानी होता है। उनके जीवन का आधार ज्ञान, श्रद्धा, भक्ति और सेवा होता है। वे सबसे प्यार तथा सुशील बर्ताव करते हैं। अपने जीवन में मालिक की सच्ची भक्ति प्राप्त करने के लिए सत्संग, सेवा तथा प्रेम में मन लगाते हैं। संसार में शांति तथा आनंद का जीवन यापन कर मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं।

अब आगे तस्वीर का दूसरा रूख अर्थात् आसुरी स्वभाव वाले पुरुषों का विवरण देते हैं।

श्री भगवान फरमाते हैं कि, ''हे पार्थ! आसुरी स्वभाव वाले पुरुषों के स्वभाव इस प्रकार हैं। दंभ, क्रोध, अभिमान, कठोर तप, कपट तथा अज्ञान ये सारे बुरे मनुष्यों के लक्षण हैं। देवी संपदा आजाद होने के लिए और आसुरी बंधन में फँसाने के लिए मानी जाती है। हे अर्जुन! तुम सज्जन पुरुषों में पैदा हुआ है और तुम देवी संपदा में गि… जाओगे। हे अर्जुन! इस संसार में दो प्रकार के स्वभाव वाले मनुष्य माने जाते है। देव… और आसुरी। देवी स्वभाव वाले मनुष्यों का वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। अब आसुरी स्वभाव वालों के बारे में सुनो। आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य करने योग्य और न करने योग्य कर्मों के भेद को नहीं जानते। इसलिए वे पवित्रता, सदाचार और सच्चाई से अनभिज्ञ रहते हैं। वे बढ़ाई, मान, अभिमान से भरे हुए कभी न तृप्त होने वाली ख्वाहिशों के लिए आसुरी कर्म करते हैं और अज्ञान के कारण बेबुनियाद और बेकार विचारों को ग्रहण करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे काम वासनाओं की तृप्ति को सबसे अधिक सुख मानने वाले उनको भोगते हुए आमरण बेकार की चिंताओं में चूर रहते

और दुखी रहते है। तृष्णाओं के बंधन में बंधकर और काम, क्रोध आदि के गुलाम बनकर, विषयों तथा लोभ में फँसकर कार्य करते हैं। वे लोग, "मैं और मेरी" वाली जाल में फँसकर ऐसे कहते है कि, "आज मैंने अमुक दुश्मन को मारा, अब बाकी दुश्मनों को भी नहीं छोड़ूँगा।" "मेरे हाथ में ताकत है, हुकूमत है और कमाल है।" "मैं बलवान हूँ, सुखी हूँ और सब कुछ कर सकता हूँ।" यह धन संपत्ति मेरी है और वह भी मेरी होगी।" "मैं भाग्यवान हूँ और ऊँच कुल वाला हूँ, मेरे बराबर और कौन है?" "मैं दान पुण्य करूँगा, आनंद मनाऊँगा आदि"। ऐसे पुरुष अज्ञान के कारण "मैं" के चक्कर में मोहित होकर गुमराह हो जाते हैं। ऐसे अनेक प्रकार के भ्रमों में भटककर अज्ञानी चित्त वाले मनुष्य मोह जाल में विषय भोगों में फँसकर अपवित्र नरकों में गिर जाते हैं। वे अहंकारी और कपटी लोग धन और मोह के मद में चूर होकर पाखंड द्वारा केवल अपना नाम बढ़ाने के लिए, शास्त्र विधि की वृद्धि, भक्ति का दिखावा करते हैं। वे अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोध के सहारे रहने वाले पुरुष औरों की निंदा करते है। इस प्रकार वे अपने चाहे दूसरों के अंतर में रहने वाले मालिक से द्वेष करते हैं। ऐसे निर्दयी पुरुषों को मालिक नीच योनियों में गिराते हैं।

आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य अशुभ घड़ियों में जन्म लेते हैं। उनका यही सिद्धांत होता है, कि जब तक रहो, ऐश-आराम से रहो, खाओ-पीओ और भोग विलास करो। वे शरीर को विषय भोग का आधार मानकर दिन रात नफसानी विषयों में मग्न रहते हैं। उनके लिए इंद्रियों के सुख ही सर्वोपरि है।

इसी प्रकार दो प्रकार की वृत्तियाँ और दो प्रकार के मनुष्य होते हैं। ऐसा भी कहा जा सकता है कि इन संसार में आने वाले मनुष्य दोराहे पर खड़े रहते है, जहाँ से दो रास्ते निकलते हैं। एक का नाम संसार मार्ग है और दूसरे का भक्ति मार्ग। पहला संसार मार्ग तो ऐसा होता है, जो शुरू-शुरू में तो बड़ा विशाल दिखता है। उस मार्ग पर चलने पर पहले बहुत सुंदर दृश्य दिखाई देते है, जिनको देखकर मनुष्य मोहित हो जाता है। परंतु थोड़ा आगे चलने पर रास्ता ऊबड़-खाबड़ और अंधेरों से भरा होता है, जिससे मनुष्य दुखी और परेशान हो जाता है और औंधे मुंह गिर जाता है। परंतु इतना होने पर भी आशा-तृष्णा उसका पीछा नहीं छोड़ती। माया ने शुरू में मनमोहक नजारे दिखाए थे, उसी उम्मीद में यह सोचकर कि आगे शायद आनंद भरे नजारे होंगे। वह अंधेरे में ठोकरें

खाते हुए आगे बढ़ता जाता है। आखिर में परिणाम यह निकलता है कि आगे जाक उनकी पथ प्रदर्शक माया, उनको अंधेरे गड्ढे में जाकर गिराती है जहाँ काल मुँह बा उनकी बाट जोहता रहता है और उनका ग्रास ही एक बना लेता है। इस प्रकार वह अनेव जन्मों तक उस गड्ढे से बाहर नहीं निकल सकता।

इसके विपरीत दूसरा रास्ता जो भक्ति मार्ग का है, वह शुरू में कुछ मुश्किल और सुख से खाली प्रतीत होता है और जैसे-जैसे मनुष्य उस रास्ते पर आगे बढ़ता अंधेरा दूर होता जाता है। रास्ता जो पहले तंग और ऊबड़-खाबड़ दिखता था, वह आ चलकर चौड़ा होता जाता है। हर तरफ रोशनी ही रोशनी फैलने लगती है और आ चलने पर इतना रस, आनंद और सुख मिलता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता

थोड़े शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि संसार मार्ग नीचे की ओर ले जा वाला मार्ग है और भक्ति मार्ग ऊँचाई की ओर ले जाने वाला मार्ग है या परम गति क पाने वाला मार्ग है। संसार मार्ग में नीचे की ओर ले जाने पर काल रूपी गड्ढे में गिर के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की सीढ़ी है। कुदरत ने मनुष्य को दोरा के मुँह पर लाकर खड़ा कर दिया है। अब यह मनुष्य का अपना कर्तव्य है कि वह कि रास्ते को अपनाता है। भक्ति मार्ग में आगे बढ़ने के लिए सत्पुरुष और संसार मार्ग बढ़ने के लिए काल तथा माया, काम कर रहे हैं। सत्पुरुषों का काम तो मनुष्यों क समझाना तथा भले-बुरे की पहचान कराने का होता है। इसके बाद यह जीव का अपन ...म है कि जिसमें वह अपनी भलाई समझे, वही करे।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण भगवान बोले, ''काम, क्रोध तथा लोभ ये तीनों नर्क के द्वा हैं और ये तीनों जीवों को बहुत बुरी गति में पहुँचाने वाले हैं। अत: इन तीनों का त्या करना चाहिए।'' हे अर्जुन! भक्ति मार्ग में चलने वाले पुरुष अपने कल्याण के लिए इ तीनों तथा अज्ञान का त्याग करके उद्म करते हैं। परंतु जो जीव शास्त्रों की मर्यादा व विपरीत अपने मन की मति के अनुसार कार्य करता है वह न तो सुख और न ही सिद्धि को तथा परम गति को प्राप्त होता है। इसलिए हे शूरवीर अर्जुन! तुम विचारपूर्वव समझदारी से करने योग्य तथा न करने योग्य कर्मों की पहचान कर। फिर उसके बा शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार तथा सत्पुरुषों के उपदेश के अनुरूप अपनी जिंदगी गुज़ारो इसी में ही तेरा कल्याण है।

अध्याय - 17

इस सतरहवें अध्याय में जिसका नाम श्रद्धात्री विभाग योग है, इसमें तीन किस्मों की उपासना, तीन किस्म के आहार तथा तीन प्रकार के दानों का भी वर्णन किया गया है। श्री कृष्ण भगवान ने फरमाया कि, ''श्रद्धा तीन-तीन प्रकार की होती है। एक सात्विक श्रद्धा, जिसका गुण भलाई, दूसरी राजसिक जिसका गुण शक्ति और तीसरी तामसिक जिसका प्रधान गुण अज्ञान होता है। हर जीव की श्रद्धा उसके स्वभाव के अनुसार अलग-अलग होती है। सात्विक स्वभाव वाले मनुष्य भगवान की पूजा करते हैं। राजसिक वाले यज्ञ आदि की तथा तामसिक श्रद्धा वाले पुरुष अहंकार के वश होकर अपने शरीर को अनेक प्रकार के उपवासों द्वारा कष्ट देकर अपनी आत्मा को दुखी करते है। इन्हीं तीनों प्रकार की श्रद्धा के अनुसार तीन प्रकार के आहार, तीन प्रकार के यज्ञ, तप तथा दान भी होते हैं। इस प्रकार इन तीनों गुणों की प्रेरणा से किए कर्मों का मतलब कुछ भी नहीं होता। परंतु इन तीनों गुणों के चक्कर से बाहर निकलकर भक्ति के अनुसार किए हुए कर्म जीव को भक्ति प्राप्त करने में सहायक होते हैं। तीनों गुणों के अंतरगति कार्य करते हुए मन पर मैल चढ़ती है, परंतु भक्ति अनुसार किए हुए कर्मों द्वारा मन पवित्र और निर्मल होता है। सभी शास्त्रों के ज्ञान का वास्तविक अर्थ भी केवल सच्ची भक्ति ही है। इसलिए ज्ञानी पुरुष अपने सब कर्मों को मालिक के नाम से शुरू करते है और मालिक के निमित्त उन कर्मों को अर्पण कर देते हैं। मनुष्य की जैसी-जैसी धार्मिक श्रद्धा होती है, उसके अनुसार ही वह मालिक के स्वरूप की पूजा करता है और जिस स्वरूप की वह पूजा करता है, वैसा ही उसका स्वभाव तथा जीवन बनता है।

शुरू में भक्त अर्जुन ने भगवान से प्रशन किया था, ''हे प्रभो! जो मनुष्य शास्त्र मर्यादा को त्यागकर केवल श्रद्धा रखकर देवताओं आदि की पूजा करता है, उसकी वृत्ति किस तरह की होती है? क्या सात्विक, राजसिक या तामसिक?''

उत्तर में श्री भगवान ने फरमाया, ''हे अर्जुन! सब मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंत:करण के अनुसार होती है। हर पुरुष श्रद्धा रूपी ही होता है। श्रद्धा के बिना कोई

भी पुरुष नहीं होता। इसलिए जिस पुरुष की जैसी श्रद्धा होगी, वैसा ही वह
जाता है।''

श्रद्धा या विश्वास मनुष्यों के ख्यालों के आधार पर होता है। अर्थात् जिस प्रक
के ख्याल होंगे वैसी ही मनुष्य की जिंदगी भी बनेगी। संसार में ख्याल का बड़ा मह
होता है। यही एक ऐसी चीज है, जिसका मनुष्य के जिंदगी में बड़ा असर पड़ता
ख्याल यदि कम और निम्न प्रकार के होंगे, तो वह मनुष्य ऊँचे दर्जे का होगा। हर मनु
की कीमत या दर्जा, उसके ख्यालों के आधार पर पहचानी जाती है। किसी मनुष्य
पहचान करनी हो तो, उनके ख्यालों के कसौटी पर उन्हें परखा जा सकता है। दुनिया
कोई मान, इज्जत या शौहरत पाता है तो वह भी केवल उनके ख्यालों के आधार पर
यदि कोई जिल्लत, गिरावट या तंगी की हालत में रहता है तो वह भी उनके अ
ख्यालों के आधार पर ही होता है। कुदरत ने हर मनुष्य को आजाद ख्यालों की मंज
दे रखी है। जो जैसे अपने को चाहे बना सकता है। यही बात श्री कृष्ण भगवान, अ
को समझा रहे हैं। हर मनुष्य की जिंदगी अपनी श्रद्धा के आधार पर खड़ी रहती
खास करके रूहानी दुनिया में तो ऊँचे और रूहानी ख्यालों के आधार पर ही तरक्
संभव है। दूसरी हालत में ऐसा करना मुश्किल तथा नामुमकिन है। इसलिए श्री कृ
भगवान अपने प्यारे शिष्य भक्त अर्जुन को ऊँचे दर्जे की रूहानी श्रद्धा रखने के लि
बार-बार कह रहे है। उन्होंने यह भी बतलाया कि श्रद्धा या विश्वास के बिना तो क
मनुष्य हो ही नहीं सकता। किसी ना किसी किस्म के ख्याल तो पक्के अवश्य होंग
जबकि यह उसूल भी है तो फिर क्यों ना रूहानियत के ऊँचे ख्यालों को हृदय में स्थ
दें और क्यों बेकार के ख्यालों को मन में बसाकर अपना रूहानी नुकसान करें?

आगे चलकर बतलाते हैं कि देवताओं की पूजा करना सतो गुणी श्रद्धा वालों
काम है। यक्ष तथा राक्षसों की पूजा राजसी श्रद्धा वालों का और अज्ञानी तथा तामसि
श्रद्धा वाले भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं

इस प्रकार तीन तरह के तप, यज्ञ तथा आहार भी है - ''जिस प्रकार सब प्राणि
को भोजन अपने स्वभाव के अनुसार अच्छा लगता है, उसी प्रकार यज्ञ, तप तथा दान
तीन तरह के होते हैं। उनके भेद को अलग-अलग सुनो। तीन प्रकार के आहारों
सात्विक आहार वह है जो आयु, बल, बुद्धि, स्वास्थ्य, सुख तथा प्रेम को बढ़ाता है अ

रसीला, मीठा और मन को भाता है। राजसी भोजन वह है जो कड़ा, खट्ठा, नमकीन तेज, जिगर को जलाने वाला तथा दुख और चिंता को पैदा करने वाला होता है। तीसरे किस्म का आहार तामसी भोजन होता है जो अधपक्का, फीका, बेमजे, बदबूदार, बांसी तथा झूठा या अपवित्र होता है।''

अब तीन प्रकार के यज्ञ बताते हं, ''शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार जो कर्म है और जिनको करना मनुष्य का कर्तव्य है, ऐसे कर्म मन को एकाग्र करके और फल की इच्छा को त्यागकर, नियम के अनुसार किए जाते हैं, वे सात्विक यज्ञ कहे जाते है। हे अर्जुन! जो कर्म केवल दिखावे के कारण फल की इच्छा रखकर किए जाते हैं, उनको राजसी यज्ञ जानो। शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध श्रद्धा से रहित किए कर्मों को तामसी यज्ञ कहते हैं। ऐसे कर्मों में अज्ञानी पुरुषों का मन लगा रहता है।

अब तीन प्रकार के तप फरमाते है, ''देवता, गुरू और विद्वान पुरुषों की पूजा करना, पवित्रता, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, और अहिंसा, ये शारीरिक सतो गुणी तप है। जोश को न बढ़ाना, प्रिय, कल्याणकारी मीठे बोल तथा मालिक के नाम जपने का अभ्यास ये वाणी के तप है। मन की प्रसन्नता, शांति, मालिक के स्मरण में लगे रहने का स्वभाव मन को वश में करना, अंत:करण की शुद्धि, ये मन संबंधी तप है। ये तीनों प्रकार के तप फल की इच्छा न रखने वाले निष्कामी, योगी पुरुषों द्वारा श्रद्धा सहित किए सात्विक तप कहे जाते हैं। जो तप सत्कार, पूजा, मान या केवल पाखंड तथा दिखावे के लिए किए जाते हैं वे अल्प फल देने वलो राजसी तप कहे जाते हैं। जो तप अज्ञान तथा मूर्खता के अभिमान से, मन, वाणी तथा शरीर को कष्ट देकर, दूसरों का अहित करने के लिए किए जाते हैं, वे तामसी तप कहे जाते है।''

तीन प्रकार के दान इस प्रकार है, ''हे अर्जुन! दान देना अपना कर्तव्य समझकर जो दान, देश, काल तथा पात्र का विचार करके, बदले में कोई ख्वाहिश न रखकर किया जाता है वह दान सात्विक होता है। जिस दान करने से मन दुखी होता है, बदले की ख्वाहिश तथा फल की इच्छा रखकर किया जाता है, उसको राजस दान कहा जाता है। जो दान, आदर, मान, सत्कार तथा श्रद्धा भावना के बिना किया जाता है और अयोग्य पात्र अर्थात् जो दान पाने का अधिकारी न हो, उसको अयोग्य देश तथा काल में दिया जाता है, वह दान तामसी कहा जाता है। परंतु जो पुरुष इन गुणों के लगाव से मुक्त

होकर भक्ति के अनुसार यज्ञ, तप, दान, पूजा और उपासना करते हैं, वे मोक्ष अधिकारी होते हैं। इसलिए हे अर्जुन! फल की इच्छा को त्यागकर जिज्ञासु पुरुषों व कर्म करना ही श्रेष्ठ और लाभदायक होते हैं।"

हे पार्थ! मालिक का नाम श्रेष्ठ भाव में ही लिया जाता है, इसलिए वह सत्य उत्तम कर्मों में भी सत शब्द ही इस्तेमाल होता है। यज्ञ, दान तथा तप में जो स्थिति ह है, वह भी सदा संसार में सत ही होती है। मालिक के निमित्त किया हुआ हर कार्य सत है। हे अर्जुन! बिना श्रद्धा भगवान को किया हुआ होम, यज्ञ, दान, पुण्य तथा आदि जो भी शुभ कर्म है, वे सब विचारवान पुरुषों की दृष्टि में असत ही म जाता है।

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि सचिदानंद प्रभु के नाम का सदा ध्यान स्म करते हुए निष्काम भाव से केवल मालिक के निमित्त, शास्त्र मर्यादा के अनुसार, अ कर्मों को सच्ची श्रद्धा तथा प्रोत्साहन से करता रहे।

अध्याय - 18

श्रीमद्‌भग्वद गीता का अठारहवां अध्याय बाकी सब अध्यायों से खास और अधिक ध्यान देने लायक है। इस अध्याय का नाम मोक्ष योग है। और इसमें मुक्ति के सिद्धांत का बड़ी खूबी से वर्णन किया गया है। यह अध्याय सारी गीता का तत् है। इसमें श्री कृष्ण भगवान ने अपने पहले किए हुए उपदेशों का विशेष तत् भरा है। कर्मों के त्याग तथा कर्मफल के त्याग में जो बड़ा फर्क है, उसको श्री भगवान ने अच्छी तरह खोलकर समझाया है। वास्तव में त्याग क्या है? त्याग के तीन किस्म और कर्म के तीन किस्म कौन से हैं? इन सबको इस अठारहवें अध्याय में अच्छी तरह से समझाया गया है। कर्म को ही त्याग देना असल त्याग नहीं है। बल्कि नित सब कर्मों को करते हुए उनके फल की इच्छा को त्याग देने का सच्चा और पूरा नाम त्याग है। श्री भगवान फरमाते हैं कि सबसे सही रास्ता यही है कि लगाव से रहित और फल की इच्छा को छोड़कर सब कर्म करने चाहिए। इसके बाद सात्विक, राजसिक तथा तामसिक तीनों प्रकार के त्याग और उनके अलग-अलग गुणों का वर्णन करते हैं। फिर हरेक कार्य करने में जो पाँच कारण है, उनको भी समझाते है। जो मनुष्य अंतर दृष्टि को शुद्ध रखता है और कर्म करने में जिसकी भावना पवित्र होती है, वह अपने भले या बुरे कर्मों के फल भोगने से मुक्त रहता है। त्रिगुणी माया से छूट पाना बहुत मुश्किल है। बुद्धि तथा चतुराई के बल से न तो इस सृष्टि के मनुष्य और न ही स्वर्ग के देवता ही त्रिगुणी माया से मुक्त हो सकते हैं। परंतु जो अनन्य भाव से मालिक के शरण में आता है, वह माया के जाल से आसानी से मुक्त हो जाता है। उसके बाद श्री कृष्ण भगवान ने फरमाया कि अपने गुण स्वभाव के अनुसार ही अपने धर्म की पालना करना सबके लिए श्रेष्ट है। दूसरे का धर्म यदि ऊँचा भी हो फिर भी अपने धर्म के मुकाबले में बहुत कम है। अपने जीवन में कामयाबी पाने के लिए यह जरूरी है कि अपने धर्म की पालना करते हुए सब करने योग्य कर्मों को करते रहना चाहिए। उन कर्मों तथा उनके फल को मालिक के चरणों में अर्पण करते रहना चाहिए। इससे बढ़कर कोई और रूहानी ज्ञान नहीं है जिससे मालिक की प्राप्ति होती है। वह गुप्त ज्ञान श्री कृष्ण भगवान ने भक्त अर्जुन को अपना

परम भक्त जानकर बताया। साथ ही यह चेतावनी दी कि यह खास भेद अधिकारी औ संस्कारी रूहों के सिवा, किसी और को नहीं बताना। तत्पश्चात् फिर श्री भगवान बोले ''हे अर्जुन! सब धर्मों को छोड़कर तुम मेरी शरण में आ जा, फिर सब प्रकार के कर्म बंधन से मुक्त करने का जिम्मा मेरा है।'' इस प्रकार सब कुछ मालिक के चरणों में अर्पण कर देने का नाम ही शरणागति है और शरणागति होना ही भक्ति मार्ग की असली तथा आखिरी सीढ़ी है। उसी से सारे मनोरथ सिद्ध होते हैं और सारी मंजिलें आसानी से तय हो जाती है। मोक्ष की इच्छा वाले को सच्चे दिल से मालिक के शरणागति होकर मालिक के निमित्त सब कर्म करते हुए अर्पण कर देना चाहिए। यही सारे उपदेशों का सार और तत्व है।

अब भक्त अर्जुन सवाल करता है, ''हे महाबाहो! हे अंतरयामी! हे वासुदेव! मैं संन्यास तथा त्याग का अलग-अलग भेद जानना चाहता हूँ।''

उत्तर में श्री भगवान फरमाते है, ''कुछ विद्वान पुरुष यूँ कहते हं कि लगाव से रहित सभी करने योग्य कर्मों की पालना करने का नाम सन्यास है। बहुत से अन्य विचारवान पुरुष सब कर्मों के फल को त्याग करने को ही त्याग कहते हैं। कुछ समझदार लोग ऐसा भी कहते हैं कि सभी कर्म पाप युक्त होते है, इसलिए उनको त्याग देना चाहिए। परंतु कुछ औरों का विचार है कि शुभ कर्म, तप, दान आदि त्यागने योग्य नहीं है।'' हे अर्जुन! इसी त्याग के विषय में तुम मेरे विचारों को सुनो। त्याग तीन प्रकार के होते हैं, सात्विक, राजसिक तथा तामसिक। शुभ कर्मों का त्याग करना उचित नहीं अपितु उनको करते रहना ही धर्म है। क्योंकि उनको करने से मन पवित्र होता है। इसलिए मेरा यह मत है कि तप, दान, पुण्य या और भी जो शुभ कर्म है, उनमें से लगाव को निकालकर तथा फल की इच्छा को त्यागकर, नियम के अनुसार सदा करते रहना चाहिए। हे अर्जुन! वैसे भी अपने करने योगय कर्मों का त्याग करना ठीक नहीं है। इसलिए मोहवश होकर उनका त्याग करना, तामसी त्याग माना जाता है। हे अर्जुन! कर्म को करना ही कर्तव्य है। जो ऐसा मानकर अपने धर्म के अनुसार करने योग्य कर्म लगाव को त्यागकर तथा फल की इच्छा को त्यागकर करता है वह सात्विक त्यागी माना जाता है। जो पुरुष आम कार्य करते हुए पाप नहीं करता तथा शुभ अर्थात् कल्याणकारी कर्मों में लगाव नहीं रखता वो शुद्ध सतोगुण से जुड़ा हुआ पुरुष बुद्धिमान और त्यागी है।

क्योंकि देहधारी पुरुष के लिए पूरी तरह से सब कर्मों का त्याग करना न केवल मुश्किल अपितु नामुमकिन है। इसलिए जो पुरुष कर्मफल की इच्छा का त्याग करता है, वही सच्चा त्यागी है।

वास्तव में जीव के लिए कर्म बंधन का रूप नहीं है। बल्कि उसमें सुरिति को फँसाकर तथा केवल कर्म में फल की इच्छा या ख्वाहिश रखना, ये बातें ही वास्तव में बंधन का रूप हैं। इसलिए श्री भगवान जी लगाव न रखने तथा फल की इच्छा को त्यागने पर अधिक जोर दे रहे है। लगाव, कामना, अहंकार तथा बढ़ाई ये सब जंजीरें है जो मनुष्य को काल के बंधन में बाँधकर रखते हैं और फिर जीव बार-बार कर्म फल के अनुसार सुखी या दुखी होता है।

''मेरी मेरी धार-बंधन बाँधिया।

नर्क स्वर्ग औवर-माया मांघिया।।''

(गुरूबाणी)

इसीलिए सत्पुरुष कर्मों के त्यागने को या संसार को छोड़ने का उपदेश कभी नहीं देते, परंतु लगाव, मोह, ममता, अहंकार तथा ख्वाहिश को जड़ से काटने पर जोर देते हैं। वासना ही वह बीज है जो बार-बार पैदा होता हे। उस बीज का नाश करने का नाम ही मोक्ष है। जिससे यह जीव फिर कभी पैदा नहीं होता है और न ही आवागमन के चक्कर में आता है। कर्मों को न करना अर्थात् अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ना है। इसलिए श्री कृष्ण भगवान ने कर्मों के त्याग को मूर्खता तथा तामस त्याग का नाम दिया है। कर्म न करने से बेगार ही अच्छी है क्योंकि उनसे मन में पवित्रता और सच्चाई आती है और धीरे-धीरे भक्ति का बीज हरा होकर अंकुर पैदा होता रहता है। परंतु उसमें एक शर्त है जिसके लिए सत्पुरुषों का विचार है कि करने योग्य कार्य यदि श्रेष्ठ तथा शुभ भी है, तो भी यदि उनमें सुरिति का लगाव, ममता तथा मोह होगा तो वे भी बंधन का कारण बनेगा। क्योंकि लगाव होने से अवश्य अहंकार और फल की इच्छा पैदा होती है। फिर जहां ख्वाहिश पैदा हुई, वहाँ दुख तथा बंधन का होना भी जरूरी होता है। जहाँ और जिसके मन में वासना तथा ख्वाहिश रहेगी, वहाँ दुख तथा बंधन का सामान पहुँचने में देरी नहीं लगती। जहाँ बीज होगा, वहाँ वह अपना फल भी जरूर पैदा करता रहता।

वासना के बीज का विनाश करना ही वास्तविक त्याग है। इसके अतिरिक्त त्याग कु
और नहीं है।

> "ए गुनवंति बेलड़ी अवगुन भी तुझ मांह।
> जर काटे फल देत है बिन काटे मर जाह।।"
>
> *(परम संत कबीर साहिब)*

अर्थात् परम संत कबीर साहिब फरमाते हैं, "ख्वाहिश या वासना को य
गुणवान बेल का नाम दिया गया है। जाहिर में वह गुणवान है, क्योंकि उसमें सुख रू
आशा चमकती दिखाई देती है, परंतु उसमें अवगुण भी अधिक मात्रा में भरा हुआ है
वह यह है कि ख्वाहिश का फैलाव कहीं भी खत्म नहीं होता। जब यह फैलने लगती
तो उसका न आदि दिखाई देता है और न अंत। इस वासना रूपी बेल का फायदा ये
कि यह जड़ काटने पर फल देती है। अर्थात् यदि कोई सोचे कि अमुक ख्वाहिश व
पूरा किया जाए तो वह समाप्त हो जाएगी, ऐसा नहीं होता अपितु फिर कोई अन
ख्वाहिश उसमें पैदा होने लगती है। इस प्रकार यह सिलसिला जारी रहता है। बीज व
जमीन में दबाने से उनका विनाश नहीं होता बल्कि वह और भी अधिक फैलने लग
है और उसमें नई-नई टहनियां तथा पत्ते और नए-नए फूल पैदा होते रहते है। बीज व
तोड़ने या जलाने से ही खत्म होता है। इसी प्रकार ख्वाहिश तथा वासना के बीज व
हाल भी होता है। उसको खत्म करने में ही भलाई है। नहीं तो यह तरह-तरह के फ
पैदा करती रहती है।"

तत्पश्चात् श्री कृष्ण भगवान ने तीन प्रकार के कर्मों का वर्णन किया। जो क
शास्त्र विधि से तथा कर्तापन के अभिमान को त्यागकर तथा फल की इच्छा से रहि
और राग-द्वेष के बगैर किया जाता है, वे सात्विक कर्म है और जो कर्म अधिक मेहन
तथा कष्ट से भरे हैं और फल की इच्छा रखने वाले पुरुष द्वारा किया जाता है, व
राजसी कर्म है। तीसरे कर्म जो नतीजे नुकसान, हिंसा तथा सामर्थ्य को न विचारक
किए जाते हैं वे तामसी कर्म है। इसी प्रकार तीन तरह के कर्मों के अनुसार तीन प्रक
के कर्ता या करने वाले भी होते हैं।

हे अर्जुन! जो पुरुष लगाव से रहित है, अहंकारी वचनों को नहीं बोलते, धीर

तथा उत्साह से भरे हैं और अपने द्वारा किए हुए कर्म में सफल होने या न होने में खुशी तथा दुख को महसूस नहीं करते ऐसे कार्य कर्ता सात्विक हैं। जो पुरुष लगाव से भरे है तथा फल की ख्वाहिश रखते है, लोभी है तथा औरों को कष्ट देना जिनका स्वभाव है जिनका व्यवहार अशुद्ध है, जो हर्ष, शोक में लिप्त है। वे कार्यकर्ता राजसी हैं परंतु जो पुरुष विक्षेप तथा कुमति वाले है, जो घमंडी है, शिक्षा से रहित है, दूसरों पर जुल्म करते हैं, सदा गमों में डूबे रहते है, हर कार्य कल पर छोड़ देते है, ऐसे कार्यकर्ता तामसी कहलाते है।

अब श्री कृष्ण भगवान तीन प्रकार की बुद्धि या अक्ल के विषय में बताते है, "हे अर्जुन! जो बुद्धि प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृति मार्ग को, मैं तथा हम को, बंधन तथा मोक्ष को अच्छी तरह जान लेती है, वह सात्विक बुद्धि है। हे पार्थ! जिस बुद्धि द्वारा मनुष्य धर्म, अधर्म को तथा करने योग्य कर्म तथा न करने योग्य कर्म को वास्तविक रूप में नहीं जानता, वह बुद्धि राजसिक है। और हे अर्जुन! जो बुद्धि तमो गुण से ढँकी है, जो धर्म को अधर्म मानती है तथा सब बातों को जो उलटे रूप में जानती है, वह तामसी बुद्धि है।"

हे अर्जुन! अब मैं तुम्हें तीन गुणों के सुखों का वर्णन बताता हूँ। जिस सुख को साधक भजन, ध्यान, स्मरण तथा सेवा आदि द्वारा प्राप्त करता है और उसके सब दुखों का नाश होता है, जो आरंभ में विष समान तथा अंत में अमृत के समान प्रतीत होता हो, वह मालिक के स्वरूप का ज्ञान सबसे उत्तम है और उसी को सात्विक सुख कहा जाता है। जो सुख विषयों तथा इंद्रियों के संयोग से उत्पन्न होता है वह सुख भोगने में अमृत के समान प्रतीत होता है, परंतु उसका अंत विष के समान होता है, ऐसे सुख को राजसी सुख कहा जाता है। तीसरा सुख वो है, जो भोगने के समय चाहे अंत में भी आत्मा को मोह रूपी गड्ढे में फेंकता है, ऐसा सुख तामसी सुख है। हे अर्जुन! पृथ्वी या स्वर्ग लोक में भी ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों से मुक्त हो। यह सारा संसार ही इस त्रिगुणी माया में फँसा होता है।

तीनों गुणों के चक्कर में यह सारी सृष्टि है, परंतु इन तीनों के चक्कर से ऊपर प्रेमा भक्ति तथा रूहानियत का दर्जा है। अब यह भी बताते हैं कि हे कुंती पुत्र! शुद्ध अंत:करण वाला पुरुष जिस तरह सांख्य योग द्वारा मालिक की प्राप्ति करता है तथा तत्व

ज्ञान की जो ऊँची श्रद्धा तथा विश्वास है, अब वह सब मैं तुझे बताता हूँ। तुम ध्‍ देकर सुनो। जो पुरुष अपनी बुद्धि को शुद्ध करके तथा एकाग्रचित्त रहकर वैराग्य धारण करके सदा ध्यान योग में स्थित रहकर, सात्विक वृत्ति द्वारा अपनी अंत:करण वश में करके, मन, वचन तथा कर्म को जीतकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध विषयों को त्यागकर, राग-द्वेष को नाश कर, अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध, लो ममता आदि को त्यागकर, शांत मन वाला होता है, वह कुल मालिक के स्वरूप मिलकर एक होने योग्य है। ऐसा मालिक के स्वरूप में समाया हुआ पुरुष न कि वस्तु के लिए शोक करता है और न ही किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी वस्तु की चाह रखता है। बल्कि सब हालतों में समान रहकर मेरी प्रेमाभक्ति प्राप्त होता है। उस भक्ति के माध्यम से वह अपने इष्टदेव को अच्छी तरह पहचानत तथा बिना विलंब किए उसमें समा जाता है। ऐसा मालिक को प्राप्त निष्काम कर्मयो अपने सभी कार्यों को करते हुए भी सनातन अविनाशी पद को प्राप्त कर लेता इसलिए हे अर्जुन! सत्व रूप निष्काम कर्मयोग के माध्यम से मेरे में चित्त लगाओ। मेरी कृपा से जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाएगा। यदि अहंकार के वश में होकर उपदेश को नहीं मानोगे तो परमार्थ के ऊँचे मार्ग को प्राप्त नहीं कर पाओगे। यह अज्ञान के वश होकर तुम कह रहे हो, ''मैं युद्ध नहीं करूँगा'', वह सब बेकार की ब है, क्योंकि कुदरत स्वाभाविक ही तुझे काम में लगाएगी। हे अर्जुन! जिस काम को म के वश होकर तुम नहीं करना चाहते, उसको पूरे बल स्वभाव के अनुसार तुम कुद की ओर से करने को बाध्य हो।

आगे चलकर श्री कृष्ण भगवान बोले, ''हे अर्जुन! वह कुल रूपी मालि शरीर रूपी रथ में सवार होकर हरेक के हृदय में बसता है और अपनी माया द्वारा स प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार घुमाता रहता है।'' हे पार्थ! हर तरह से तुम उ मालिक की शरण पकड़। उसकी कृपा दृष्टि से तुम बिना किसी शक-शुबे के प शांति तथा परम धाम को प्राप्त करोगे। इस प्रकार मैंने तुम्हें अति गुप्त ज्ञान का बताया है। इस पर अच्छी तरह से विचार कर और फिर जैसा तुम उचित समझ वैसा करो।

''यह उपदेश केवल अर्जुन के लिए नहीं है, बल्कि सभी आम पुरुषों का य

उपदेश होता है। अर्थात् संत महापुरुष ही हमें सत-असत की परख कराते हैं तथा इस गुप्त भेद को खोलकर समझाते हैं। तत्पश्चात् उस पर गहराई से विचारकर, कार्य निवृत करना यह मनुष्य का अपना काम है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जीव की भलाई केवल महापुरुषों के वचनों पर अमल करने का है। दूसरी सूरत में उनके बच निकलने का दूसरा कोई रास्ता नहीं होता। इसलिए जो मनुष्य सत्पुरुषों के वचनों को हृदय अंदर बसा के रखता है, और साथ ही उन पर अमल भी करता है, वह जल्दी लाभ प्राप्त करता है। बाकी लोग जो उन वचनों को अमल में नहीं लाते तथा उनके वचनों का बड़ा-बड़ा अर्थ निकालकर, केवल कथन करने में ही मस्त रहते है, वे कोरे के कोरे रह जाते हैं।''

दोहा

''यह करनी का भेद है-नहीं बुद्धि विचार,
कथनी छोड़ करनी करे तब कुछ पावे सार।
कथनी मीठी खांड से करनी विष की लोई,
कथनी छोड़ करनी करे विष से अमृत होइ।।''

(परम संत कबीर साहिब)

इसलिए संतों का कहना है कि धर्म शास्त्रों, ग्रंथों, पुराणों तथा सत्पुरुषों की वाणी में जो कुछ पढ़ो, पढ़ाओ, सुनो, सुनाओ, वह सब अच्छा है, परंतु साथ ही साथ यदि उन पर अमल भी करो, तो समझो कि सोने में सुहागा है। इसलिए श्री कृष्ण भगवान! अर्जुन को बतला रहे है कि मैंने तुझे यह अति गहन ज्ञान समझाया है। अब इस पर अमल करना, न करना यह तेरा काम है। जो इसको अपनाओगे तो फल पाओगे यदि नहीं मानोगे तो पछताओगे।

फिर आगे श्री कृष्ण भगवान बोले, ''यह संपूर्ण अति गूढ़ रूहानी भेद मैं फिर तुझे बतलाता हूँ क्योंकि तुम मेरे प्यारे शिष्य हो इसलिए यह लाभदायक वचन तुझे कह रहा हूँ कि तुम केवल मेरे सच्चिदानंद स्वरूप में अनन्य प्रेम से मन लगाओ। अति श्रद्धा तथा अटल विश्वास द्वारा सदा मेरे नाम का भजन कर। मेरा भक्त बनकर मेरी पूजा तथा मुझे ही नम्रता सहित साष्टांग प्रणाम करो ऐसा करने से तुम मुझे ही प्राप्त करोगे। यह मेरी तुझसे प्रतिज्ञा है। क्योंकि तुम मेरे प्रिय भक्त हो।''

"सब धर्मों को त्यागकर
मेरी शरण में जो आओगे,
सब पापों से मुक्त
तुम अपने को पाओगे
'कान' शोक न कर अर्जुन!
यह वादा मेरा रहा।"

अर्थात् सब धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आओ फिर मेरा वादा है मैं तुझे स पापों से मुक्त कर दूँगा। तुम चिंता मत कर।

श्री गीता के शुरू में यह बताया जा चुका है कि उस समय के महापुरुष ही वक्त के जीवों के उद्धार के लिए समर्थ होते हैं। वे उस समय के परमार्थ पथ के ज्ञाता होते हैं और जिस प्रकार भी जीवों का कल्याण हो, उस तरह की अमली कम कराते हैं। इसलिए जीव को पूरी तरह उस वक्त के महापुरुषों के अपर्ण हो ज चाहिए। एकाग्र मन से उनकी शरण ग्रहण करना अति आवश्यक है। जब इस प्रक किया जाता है तो फिर पापों के समुद्र से पार उतरने के लिए तथा सच्चे परमार्थ को में कोई कठिनाई नहीं रहती। श्री कृष्ण भगवान के लिए जैसे कि कहा गया है कि वे समय के पूर्ण पुरुष और परमार्थ के अवतार थे, इसीलिए वे अपने भक्त अर्जुन को तरह से अपनी शरण लेने के लिए बार-बार जोर देते है। भक्त अर्जुन! पहले तो मोह फँसा हुआ था, इसलिए उनकी बुद्धि परमार्थ के पथ को समझने में गड़बड़ कर थी। जैसे कि वक्त के महापुरुष ही जीवों को अपने सदुपदेश द्वारा उनका मोह न करने में समर्थ होते है। श्री कृष्ण जी के उपदेश से अर्जुन का मोह नाश हुआ और उन बुद्धि ठिकाने आई और उसने अपने फर्ज को अच्छी तरह से समझा।

श्री गीता के उपदेश समाप्त होने पर श्री कृष्ण भगवान ने प्रश्न पूछा, ' महाबाओ! क्या तुमने मेरे वचनों को एकाग्र चित्त से सुना? हे धनंजय! क्या तेरा अज्ञ से उत्पन्न मोह नाश हुआ?

उत्तर में भक्त अर्जुन! जिसके हृदय में संपूर्ण उपदेश सुनने के पश्चात् सच्च श्रद्धा तथा विश्वास उत्पन्न हो गया था तथा और उनके सारे शक-शुबे भी नष्ट हो चु

थे, नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर इस प्रकार कहा, ''हे पूर्ण पुरुष! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। मेरी अस्थिर बुद्धि अब स्थिर हो चुकी है। मेरे सारे संशय तथा भ्रम भी खत्म हो गए हैं। अब पक्के श्रद्धालु होने के नाते, मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हूँ।''

जब इस प्रकार का संयोग बन जाए जो वक्त के महापुरुष उपदेश करने वाले हों, तथा दूसरी ओर मनुष्य जिज्ञासा रूप में उनके पवित्र उपदेश को मन में धारण करते रहे अर्थात् न केवल धारण करें, परंतु अपने को उनके उपदेशों में ढाल दें तो फिर बात ही क्या? वहां फिर अज्ञान तथा मोह कैसे टिक सकता है? दुनिया भर की सारी ताकतें मिलकर भी ऐसे व्यक्ति का मुकाबला नहीं कर सकती।

यही कारण है जिससे संजय ने राजा धृतराष्ट्र को (जो आंखों से अंधा था) महाभारत के युद्ध का सारा समाचार घर बैठे बताते हुए, यह श्री कृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ गीता रूपी ज्ञान बता रहे हैं। इस स्थान पर पहुँचकर साथ ही साथ वे फैसला भी दे रहे हैं। विचार करने वाली बात ये है कि अभी तो महाभारत का युद्ध शुरू भी नहीं हुआ और अभी एक भी योद्धा मैदान में नहीं दिख रहा था। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह भी है कि पांडवों की सेना सात अक्षहूणियाँ है और कौरवों की ग्याराह अक्षहूणियों से भी अधिक है, परंतु इतना अधिक फर्क होने पर भी संजय ने अपना अटल मत व्यक्त करते हुए कहा–

''जहाँ श्री कृष्ण भगवान है
साथ में अर्जुन धनुषधारी।
'कान' वहाँ श्री विजय है
ऐसी मती है हमारी।''

(18–78)

''हे राजन! मैंने श्री कृष्ण भगवान तथा भक्त अर्जुन के भेद भरे वार्तालाप को अच्छी तरह से ध्यानपूर्वक सुना है। श्री व्यास मुनि की कृपा से प्रदान की हुई दिव्य दृष्टि द्वारा मैंने उस परम गुप्त योग को साक्षात श्री कृष्ण के मुख से सुना है। हे राजन! श्री कृष्ण तथा अर्जुन के बीच हुई वह अजीब वार्ता मैंने सुनी है और उस वार्तालाप को

बार-बार याद करके मुझे हैरानी तथा खुशी भी हो रही है। अब मेरा निश्चय भरा विच है कि जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान है तथ सामने धनुषधारी अर्जुन जैसा योद्धा त अनन्य श्रद्धा और विश्वास रखने वाला सेवक मौजूद है, वहाँ पर श्री विजय विभूति त अचल नीति का निवास है।''

ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के शुरू होने से पूर्व ही संजय ने जीत का ऐलान व दिया। ऐसा क्यों ? उसका कारण यह है कि, संजय जी को इस बात का पूर्ण विश्व था और वह इसलिए था क्योंकि उसको अपने पूर्ण गुरू वेदव्यास जी की कृपा परमार्थ के पथ को समझने वाली दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। वैसे संजय जी श्री कृ भगवान के आज्ञाकारी सेवक भी थे। जहाँ सेवक के दिल में अपने इष्टदेव के लिए म में सच्ची श्रद्धा तथा अटल विश्वास और अनन्य भक्ति होती है, वहाँ निश्चित ही सेव की जीत होती है। ऐसा सेवक, जिस कार्य में हाथ डालेगा कामयाबी अवश्य मिलेगी महाभारत का इतिहास इसी बात का एक अद्‌भुत उदाहरण है कि पांडवों की से कौरवों के मुकाबले में काफी कम थी फिर भी जीत पांडवों की ही हुई क्योंकि उनव ओर सच्चाई तथा धर्म था। दूसरी ओर कौरवों का आधार झूठ, कपट तथा अधर्म थ पांडवों की रहनुमाई करने वाला, उस समय का महापुरुष श्री कृष्ण भगवान स्वयं थे अ उधर कौरवों की रहनुमाई में बड़े-बड़े योद्धा तो अवश्य थे परंतु किसी महापुरुष व सहारा उनको न था। यही कारण था कि कौरवों ने युद्ध में हार और पांडवों की जी हुई।

''ओट लेकर पूर्ण पुरुषों की,
जिसने सर चरणों में झुकाया है।
श्रद्धा और विश्वास से
गुरू आज्ञा को अपनाया है।।
सत्गुरू की कृपा से,
जीता है अपना मन।
विजय कीर्ति उनको मिली,
'कान' जग में पाया सत् धन्न।।''



अर्जुन को विराट रुप दिखाते हुए भगवान कृष्ण

वन्दना

करबद्ध कर दास तेरा
कर रहा है प्रार्थना।
पूर्ण आशा है मेरी
होगी सफल मेरी साधना।

'गीता सार' पर लिखने का
है साहस मैंने जुटाया।
छह महीने के बाद कहीं
उसे पूरा हूं कर पाया।

माना कि मैं मनुष्य हूं
त्रुटियां तो अवश्य हुई होंगी।
है आशा पाठक क्षमा कर देंगे
यह मेरी हौंसला अफजाई होगी।

है प्रार्थना अब 'कान' की
प्रभु देना मुझे सद्बुद्धि।
नित तत्पर रहूं शुभ कार्य में
पाऊं तेरे चरण रज की निधि।

– हरिकृष्ण (कान)

मुद्रक : मेठानी प्रिन्टर्स, नागौरी गार्डन, भीलवाड़ा–311001